महाशक्तेर्लोकयात्रा

(महाशक्ति की लोक यात्रा)

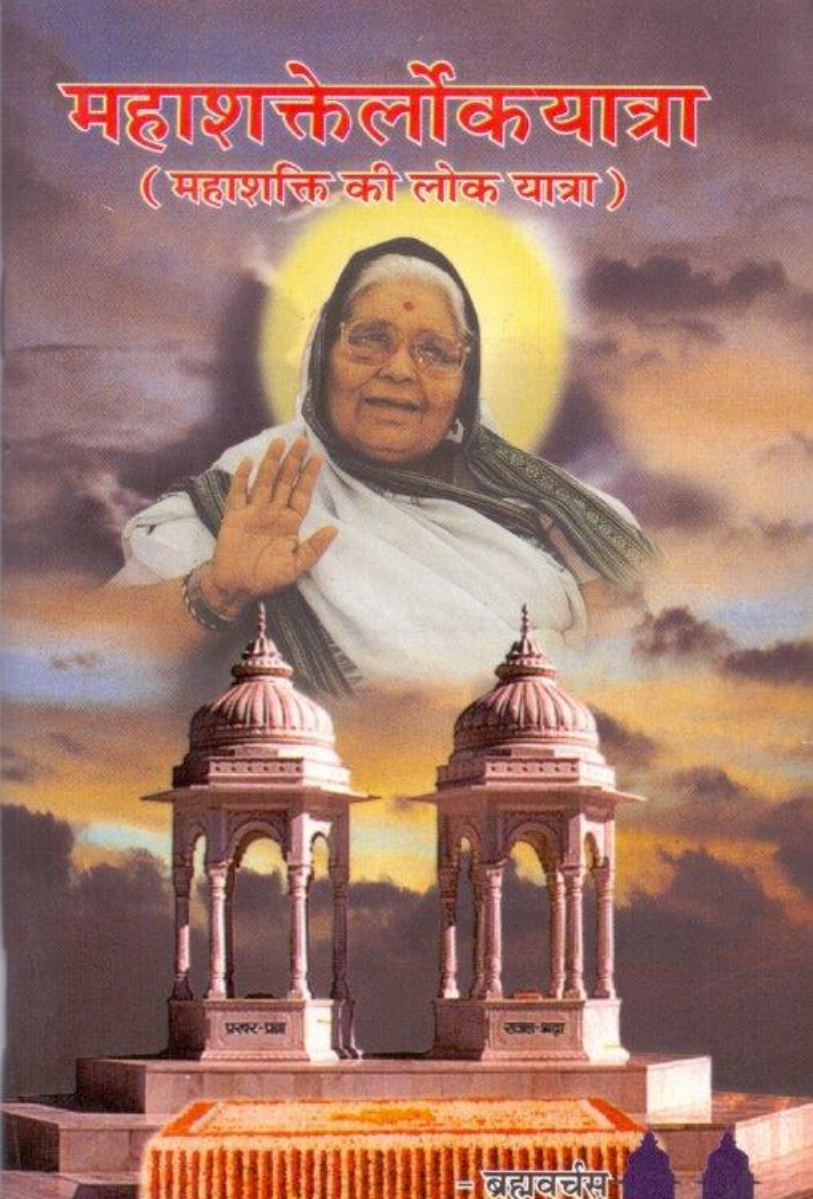

- ब्रह्मवर्चस

महाशक्तेर्लोक यात्रा

(महाशक्ति की लोक यात्रा)

मूल लेखक-सम्पादक

ब्रह्मवर्चस

संस्कृत-रचना

पं० यमुनादत्त शास्त्री

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

सन्- २०१०

मूल्य : १५.०० रुपये

विनम्र निवेदन

(हिन्दी संस्करण से सम्पादित)

'महाशक्ति की लोकयात्रा' परम वन्दनीया माताजी के दिव्य जीवन की अमृत कथा है। परात्पर प्रभु जब 'सम्भवामि युगे-युगे' के अपने संकल्प को पूरा करने के लिए मानव कल्याण हेतु धराधाम में अवतरित होते हैं, तब उनके साथ उनकी लीला शक्ति का भी नारी रूप में प्राकट्य होता है। इतिहास-पुराण के अनेक पृष्ठ भगवत्कथा के ऐसे दिव्य प्रसंगों से भरे पड़े हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के साथ माता सीता आईं। भगवान् बुद्ध के साथ यशोधरा, चैतन्य महाप्रभु के साथ देवी विष्णुप्रिया, भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के साथ माता शारदा ने अवतार लेकर उनके ईश्वरीय कार्य में सहायता की।

वर्तमान युग में उसी महाशक्ति ने माता भगवती के रूप में अपनी समस्त कलाओं के साथ इस धरालोक पर अवतार लिया। अपनी इस लोकयात्रा में महाशक्ति ने अपने आराध्य वेदमूर्ति तपोनिष्ठ युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के ईश्वरीय कार्य में सहायता करने के साथ हम सबके सामने अनेक जीवनादर्श प्रस्तुत किए। आदर्श गृहिणी, आदर्श माता, आदर्श तपस्विनी, आदर्श योग साधिका के साथ उन्होंने योग की उच्चतम दिव्य विभूतियों से सम्पन्न आदर्श गुरु का स्वरूप हम सबके समक्ष प्रकट किया। यही नहीं उन्होंने अपने पवित्र और साधना सम्पन्न जीवन के द्वारा भारतीय नारी की गरिमा को भव्य अभिव्यक्ति दी।

इन पंक्तियों के लेखक को कई दशकों तक उनके निकटतम रहने का सौभाग्य मिला है। सालों-साल एक छत के नीचे उनके साथ हँसना-बोलना, खाना-पीना, उनके वात्सल्य का सतत पयःपान करते हुए जीना, यहाँ तक कि उनके महाप्रयाण के क्षण तक उनके पास रहना,

उन्हीं की कृपा से सम्भव हुआ है। उनके साथ गुजरा हर पल अभी भी स्मृतियों में सुरक्षित और संरक्षित है। उनके संस्मरणों को याद करने से गहन साधना से प्राप्त होने वाला आत्मबल और अजस्र शांति मिलती है। मैंने उनके जीवन को सदा से बहुआयामी देखा है। वे अति सरल-सहज एवं अति रहस्यपूर्ण थीं। लोक में रहते हुए भी वे पूर्णतया अलौकिक थीं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि उनके जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या पूर्णतया असम्भव है।

ब्रह्मवर्चस द्वारा सम्पादित इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है, वह दृश्य-सत्यों का भावपूर्ण संकलन है। हालाँकि ये दृश्य-सत्य ऐसे झरोखों की तरह हैं, जिनसे अदृश्य बरबस झाँकता-झलकता और प्रकट होता है। यदि भक्तिपूर्ण रीति से, श्रद्धा भाव से इसे पढ़ा जाएगा, तो पढ़ने वाले की मानसिक चेतना परामानसिक अनुभूतियों के क्षीर सागर में तैरने लगेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। साधना पथ के जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक मार्गदर्शिका है। स्थूल देह में न रहने पर भी असंख्य जन आज भी वन्दनीया माताजी की पराचेतना की अनुभूति प्राप्त करते हैं। सत्य यही है कि इन क्षणों में इस पुस्तक को थामे हुए जनों के हृदयों में उठ रहे भाव स्पन्दनों को वह महसूस कर रही हैं।

उन्हें पुकारने के लिए इस पुस्तक का पठन और श्रवण एक श्रेष्ठ साधना है। इसमें उनकी लोकयात्रा के ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जो हमें उन भावमयी की भावनात्मक अनुभूति देने में समर्थ हैं। योग विज्ञान के विद्यार्थी उनके इन प्रसंगों को पढ़ने व मनन करने से समझ सकेंगे कि सच्ची योग साधना क्या होती है ? जो भक्त हैं, उनके लिए महाशक्ति की लोकयात्रा का पठन और चिंतन जीवन-सुधा की तरह है। वे इस लोक में हम सबके लिए ही आई थीं। हमारी अंतश्चेतना को जगाने, इसे ऊपर उठाने, हम सबके जीवन को कष्ट-कठिनाइयों से छुटकारा दिलाने के लिए वे अपनी समूची लोकयात्रा में प्रयत्नशील रहीं। आज जब वे

पने दिव्यधाम में हैं, तो भी उन्हें सदा हमारा ही ध्यान रहता है।

ऐसी वात्सल्यमयी माँ को भक्तिपूर्ण प्रणाम करते हुए मेरी यही ार्थना है- **प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।**
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥

- दुर्गा सप्तशती ११/३५

अर्थात् 'विश्व की पीड़ा को दूर करने वाली माँ! हम तुम्हारे रणों में पड़े हुए हैं, हम पर प्रसन्न होओ। त्रिलोक निवासियों की ूजनीया परमेश्वरी! सब लोगों को वरदान दो।' महाशक्तिमयी माताजी ी इस प्रार्थना के साथ यह पावन प्रयास अब आपके हाथों में सौंपा जा हा है। आप सभी पर उनके कल्याणमय आशीषों की सतत वर्षा होती रहे।

- डॉ. प्रणव पण्ड्या

शुभाशंसा

(संस्कृत संस्करण के सम्बन्ध में)

'महाशक्ति की लोकयात्रा' में परम वन्दनीया माताजी का जो विराट् स्वरूप प्रकट हुआ है, उसे दैवीवाक् संस्कृत की काव्यमयी वाणी में '**महाशक्तेर्लोकयात्रा**' के रूप में प्रस्तुत करके हमारे **वेद विभाग** में कार्यरत पं० यमुनादत्त शास्त्री जी ने मिशन की अनुपम सेवा की है। इनका यह कार्य अत्यधिक प्रशंसनीय-अभिनन्दनीय है। इसके लिए इन्हें हृदय से साधुवाद प्रदान करता हूँ। साथ ही पूज्य गुरुदेव-वन्दनीया माताजी से प्रार्थना है कि वे श्री शास्त्री जी के जीवन को स्वस्थ-नीरोग बनाए रखें, जिससे वे इसी तरह मिशन के कार्य में अपना जीवन धन्य बनाते रहें।

महाप्रयाण दिवस- वन्दनीया माताजी
महालया पूर्णिमा संवत् २०६२

- डॉ. प्रणव पण्ड्या

हे मातः!

मातस्त्वदीय पदपंकजमेव नित्यं,
ये संस्मरन्ति विमलेन समर्पणेन।
धन्यास्त एव यशसा तपसा महिम्ना,
संभूषयन्ति धरणीं विबुधैर्विलुब्धाम्॥ १॥

अर्थ- हे माँ! जो मनीषी जन विशुद्ध समर्पणभाव से आपके चरण-कमलों का नित्य-नियमित रूप से स्मरण करते हैं, वे धन्य हो जाते हैं। उनके तप से, यश से एवं महत्त्व से वसुन्धरा की इतनी शोभा बढ़ जाती है, जिससे देव-शक्तियाँ भी भारत भूमि पर अवतरित होने की अभीप्सा (चाह) करती हैं।

मातः सदैव सुखदुःखमयेऽत्र लोके,
रक्षार्थमेकमवलम्बनमात्रमस्ति ।
आवाहयामि सततं त्वयि प्राप्तरक्षः,
नान्यांस्त्वदन्यसुलभान् अभिभावकांश्च॥ २॥

अर्थ- हे माँ! तुम्हारे सिवा हम बच्चों का और कौन सहारा है। समय-कुसमय हम सब केवल तुम्हें ही पुकारते हैं। भले ही आपके अतिरिक्त अन्य अभिभावक हमें सुलभ हैं, परन्तु हमें विदित है कि हमारी नादानियों को अनदेखा करके एक तुम्हीं अपना सकती हो।

देवा न सन्ति कति विश्ववसुन्धरायां,
यच्छन्ति पात्रमनुभूय विकासभूतिम् ।
किन्तु ब्रवीमि विदुषां पुरतः प्रसह्य ,
एका त्वमेव क्षमते सकलापराधान्॥ ३॥

अर्थ- इस विशाल वसुन्धरा पर दैवी शक्तियों की कोई कमी नहीं है, जो साधक की पात्रता को परख करके ही उसके योग्य विभूतियाँ प्रदान

करती हैं। विद्वानों के समक्ष उपस्थित होकर हम यह बड़े दावे के साथ कह सकते हैं कि हमारी कमजोरियों, बेवकूफियों एवं नादानियों को एकमात्र आप ही क्षमा कर सकती हैं।

एकाक्षरं मंत्रमिदं त्वदीयं,
नामैव चास्मान् परितः सुपायात्।
लीला कथा सा तव पुण्यवार्ता,
भक्तिं प्रयच्छातिकृपां कुरुष्व॥ ४॥

अर्थ- हे माँ! आपका यह एकाक्षर नाम 'माँ' ही हमारी रक्षा करने वाला एकाक्षर मन्त्र है, जो हर परिस्थिति में हमारी सब प्रकार से रक्षा करता है। आपकी चरित्र-गाथा ही अत्यन्त पुण्यदायिनी है। हे माँ! आप हमें भक्ति प्रदान करने की कृपा कीजिए।

मातृतत्त्वम्

ध्यानेन ज्ञानेन विधाय सिद्धिं,
जनः कृतार्थो भवतीति दृष्टम्।
ततः परं तत्त्वमयं निचाय्य,
मातुस्तदा सम्यगवैति रूपम्॥ ५॥

अर्थ- संसार में देखा जाता है कि ध्यान के द्वारा, स्वाध्याय के द्वारा अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर साधक कृतार्थ हो जाता है, परन्तु मातृतत्त्व का बोध उसके पश्चात् ही कर पाता है। आत्मशुद्धि के बिना मातृतत्व का सही ज्ञान नहीं हो पाता है।

धन्या धरित्री स च धन्यधन्यः,
देशश्च कालश्च तथैव धन्यः।
ते पुण्यवन्तः खलु भाग्यवन्तः,
यत्रादिमाता चिनुते स्वरूपम् ॥ ६॥

अर्थ- जहाँ आद्यशक्ति मानव-स्वरूप में जन्म ग्रहण करती है, वह स्थान, वह प्रदेश, वह भूमि धन्य हो जाती है। इसी प्रकार वह शुभ समय भी अत्यन्त पुण्यशील होता है, जब ईश्वरीय शक्ति वसुधा पर अवतरित होती है।

महादिशक्तेरवतारकाले,
दिशः प्रसन्नाः सुरभिश्च वातः।
देवाश्च सिद्धाश्च तपस्विनश्च
स्वयं सहायाः प्रभवन्ति नित्यम् ॥ ७॥

अर्थ- महाशक्ति के अवतार लेने के समय समस्त दिशाएँ निर्मल हो जाती हैं, सुरभित पवन बहने लगता है। देवता, सिद्ध एवं तपस्वी सहायक रूप में प्रकट हो जाते हैं।

अवतरण वेला

उपासितारौ जगदम्बिकाया,
बभूवतुः पुण्यचरित्रवन्तौ।
पृश्निर्यथाऽऽ सीत्सुतपाश्चपूर्वं,
नवार्णगायत्रिपरौ विशुद्धौ॥ ८॥

अर्थ- प्राचीन काल के सुतपा एवं पृश्नि के समान ही पवित्र चरित्र वाले दम्पती थे, जो निरन्तर निष्ठापूर्वक गायत्री मन्त्र एवं नवार्णमन्त्र के जप के साथ आदिशक्ति के अर्चन-वन्दन में निरत रहते थे।

स्रुघ्न-प्रदेशे जसवन्तगेहे,
पूर्वाह्नकाले इष कृष्णपक्षे।
मासे पवित्रे ननु रामप्यारी,
प्रासूत कन्यां नवजातरूपाम्॥ ९॥

अर्थ- स्रुघ्न प्रदेश के 'आगरा' नगर में पं. जसवन्त शर्मा की धर्मपत्नी

श्रीमती 'रामप्यारी' शर्मा के गर्भ से एक सुन्दरी कन्या ने जन्म लिया। आश्विन का पवित्र महीना था, कृष्णपक्ष की चतुर्थी तिथि को पूर्वाह्न के समय उस कन्या का जन्म हुआ।

सा गर्भकाले विविधान् विशेषान्,
ददर्श स्वप्ने हिमशेखरे नु।
देवी प्रविष्टा अवलम्ब्य हस्तं,
आयातुमिच्छामि तवात्र गेहे॥ १०॥

अर्थ- उस दिव्य कन्या के गर्भवास के समय श्रीमती रामप्यारी ने अनेक अद्‌भुत स्वप्नों का अवलोकन किया। यथा-एक शुभ्र हिमशिखर पर एक देवी प्रकट हुई, लघु बालिका के रूप में प्रकट होकर उसने मेरा (रामप्यारी का) हाथ पकड़कर कहा- 'माँ' मैं तुम्हारे घर आने वाली हूँ।

यदा हि साध्यात्मिकशक्तिजाता,
सर्वेश्वरानन्द महागुरोर्हि ।
श्रीराम शर्माऽभवदेक शिष्यः,
जज्वाल दीपं यदखंडज्योतिः॥ ११॥

अर्थ- उसी वर्ष की वसन्त पञ्चमी को विश्व की महान् घटना घट चुकी थी-पन्द्रह वर्षीय श्रीराम शर्मा (परमपूज्य गुरुदेव) ने अपने हिमालयवासी महागुरुदेव सर्वेश्वरानन्द जी के मार्गदर्शन में अखण्ड-साधना-दीप प्रज्वलित किया था।

तत्रैव काले अरविन्द योगी,
संप्राप चाध्यात्मिक-चेतनायाः।
सम्पूर्णयोगस्य विशेषसिद्धिं,
एकान्तवासाय ह पांडिचेर्याम्॥ १२॥

अर्थ- इसी समय श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी में महायोगी अरविन्द पूर्णयोग की विशिष्ट सिद्धि के अवतरण की सफलता प्राप्त कर रहे थे।

इसी वर्ष के अन्तिम महीनों में वे अतिमानसिक चेतना के अवतरण के लिए पूर्ण एकान्तवास में चले गये थे।

ये द्वे विशिष्टे घटनेऽत्रजाते,
ताभ्यामुभाभ्यां अतिरिच्यमाना।
प्रत्यक्षसाक्षी जसवन्तरावः,
ससर्ज यस्यां स्वयमादिशक्तिः॥ १३॥

अर्थ- उपर्युक्त दो विशिष्ट घटनाएँ जिस वर्ष घटित हुई थीं, उसी वर्ष उन दोनों घटनाओं से भी विशिष्ट तृतीय घटना घटित हुई थी, पं. जसवन्त राव शर्मा उसके प्रत्यक्ष साक्षी हो रहे थे, जिनके घर में स्वयं आदिशक्ति ने अवतार ले लिया था।

नीलाम्बरे दृश्यमिदं ददर्श,
स्वयं जगत्पालकसूर्यदेवः।
परः सहस्रैः किरणैरवाप,
सौभाग्यमद्य प्रभुदर्शनस्य॥ १४॥

अर्थ- नीलगगन में सूर्यदेव बड़े ही सुखद आश्चर्य से इस दृश्य को निहार रहे थे। उन्हें अपनी सहस्रों किरणों से सद्यः अवतरित जगदम्बा के अर्चन-वन्दन का सौभाग्य प्राप्त हो रहा था।

सर्वासु दिक्षु प्रतिभाति शान्तिः,
माधुर्यशैतल्यमतीव चासीत्।
सर्वत्र शोभा सुषमा बभूव,
साजन्मभूमिर्ननु तीर्थभूमिः॥ १५॥

अर्थ- समग्र वातावरण में एक स्निग्धता, शान्ति,शीतलता और मधुर सुवास व्याप्त हो रही थी। धरणी का यह छोटा सा कोना तीर्थभूमि बन गया था।

महाशक्तेरवतारः

अंके गृहीत्वा नवजातकन्यां,
पपौ सतृष्णं जसवन्तरावः।
रूपं मनोज्ञं नवजातकोशं,
विलोक्य प्रोचे ह्यति भाग्यवन्ती॥ १६॥

अर्थ- जसवन्त राव भी बस सुरभिभरी कुसुमकलिका की भाँति कमनीय अपनी कन्या को गोद में लिए देखे ही जा रहे थे। पड़ोस की महिला के टोकने पर जसवन्त राव की भाव समाधि भंग हुई और वे बड़े ही हर्षित स्वर में बोले-यह लड़की बहुत ही भाग्यवती है।

तावद्गृहीत्वा तु पितुः सकाशात्,
मातुः समीपे शयितां चकार।
विलोक्य तस्याः स्मितपूर्णनेत्रे,
उवाच माता सहसैव 'देवी'॥ १७॥

अर्थ- उस महिला ने जसवन्तराव (पिता) की गोद से लेकर उस कन्या को अस्पताल के कक्ष में विश्राम कर रही 'माँ' के पास लिटा दिया। बेटी के सस्मित नेत्रों को देखकर माता ने कहा- यह सचमुच 'देवी' है।

राधा यथासीत् वृषभानुपुत्री,
लालीति नाम्ना प्रथिता व्रजेऽत्र।
तथैव सम्पूर्णगृहे नितान्तं,
स्नेहेन सिक्ता कथिता च लाली॥ १८॥

अर्थ- जिस प्रकार वृषभानु जी की सुपुत्री राधा व्रजमण्डल में 'लाली' नाम से प्रख्यात थी, उसी प्रकार सम्पूर्ण गृह-परिवार में अत्यन्त लाडली होने के कारण उस देवी-स्वरूपा कन्या को भी सब लोग 'लाली' कहकर पुकारते थे।

बाललीलाप्रसंगाः

बाल्येऽपि लाली सहजस्वभावात्,
क्रीडापरा क्रीडनकैः सहैव।
दिव्यादिशक्तेः विविधा हि लीला,
यदा कदा प्रस्फुटिता बभूवुः॥ १९॥

अर्थ- सहज बालप्रवृत्ति के अनुसार लाली का बचपन भी खिलौनों के साथ अत्यन्त उल्लासमय बना रहता था। महाशक्ति की इन लीलाओं में उनकी दिव्य क्रीडा भी यदा-कदा उजागर होती रहती थी।

क्रीडापरा भगवती शिव पार्थिवस्य,
दैनन्दिनं प्रतिविधाय पवित्रमृत्तेः।
पंचोपचारविधिना सहजस्वभावात्,
बिल्वप्रवालमुपगृह्य चकार पूजाम्॥ २०॥

अर्थ- भगवती की बालक्रीडा में उनकी दिव्य भावनाओं की झलक दिखाई देती थी। कई तरह के खेलों में उनका सबसे अधिक प्रिय खेल था 'शिवपूजा' । खेल की शुरुआत भगवान् महादेव के प्रतीक चिह्न बनाने से होती थी। पवित्र मिट्टी के शिवलिंग का निर्माण करतीं एवं उसकी विधिवत् स्थापना करने के बाद पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य एवं बिल्वपत्रों से पूजा का क्रम चलता था।

ध्यानेऽतीतावलोकनम्

शिवार्चनायै विमला सखीभिः,
दिव्यानुभूतिं गतया चिराय।
दृष्टो युवा ध्यानपरः प्रदीपं,
प्रज्वाल्य वेद्यां प्रभुसाधनायाम्॥ २१॥

अर्थ- शिवपूजन करते हुए जब वे भावमग्न होतीं, तो उनकी अन्तश्चेतना

में कई दृश्य उभरते थे। उन्हें ऐसा लगता कि एक युवक एक कोठरी में पूजावेदी पर प्रज्वलित साधना दीप के सामने ध्यानस्थ दिखाई दिया।

पुनः पुनः दृश्यमिदं विलोक्य,
साश्चर्यमेषाहृदि भावमग्ना।
विचारयामास इदं विचित्रं,
शिवः स्वयं किं विदधार रूपम्॥ २२॥

अर्थ- कई दिनों तक बार-बार इसी दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित होकर भावमग्न होती हुई विचार करने लगीं, क्या भगवान् शिव ने स्वयं अवतार ले लिया है?

युगस्य सर्गे परिवर्तनाय,
स्वयं प्रभुः किं ह्यवतारमाप।
विचारयामास यदा नु देवी,
ददर्श साक्षात् शिवमेव यूनि॥ २३॥

अर्थ- अपनी सृष्टि में युग परिवर्तन करने एक नये युग का प्रवर्तन करने के लिए प्रभु स्वयं आ गये हैं क्या? अपने इस विचार के बारे में जब-जब वे सोचतीं, बार-बार उस महायोगी युवक के रूप में उन्हें शिव का स्वरूप ही प्रत्यक्ष होता था।

पंचाक्षरं मन्त्रमिमं जपन्ती,
यदाभवत् साऽधिकभावमग्ना।
दृष्ट्वा शिवं योगिनमेव मत्वा,
नो वेद लाली क्व च कोऽयमस्ति ॥ २४॥

अर्थ- जब एक दिन पंचाक्षर शिवमन्त्र का जप करते हुए वे भावमग्न हो गईं, तो उस युवक को शिव-योगी समझते हुए सोचने लगीं कि यह योगी कौन है? एवं कहाँ रहता है? परन्तु वे नहीं जान पाईं।

खेलासु खेलासु शिवार्चनेन ,
मग्नाभवद्दिव्यरसानुभावे ।
क्रमेण बाल्यं परिहाय लाली,
नूनं बभूवायुषि सा किशोरी॥२५॥

अर्थ- शिव-पूजन के खेल-खेल में लाली दिव्य रसानुभूति में मग्न हो जाती थीं। इसी तरह बाल्यावस्था को पार करते हुए किशोरावस्था प्राप्त की।

तदा जजागार शुभा मनीषा,
आराध्यमासादयितुं विशेषा।
तत्प्रार्थनायामनुरागभक्ति-
प्रेमाणिचासन् युगसाधिकायाः॥ २६॥

अर्थ- उनके हृदय में साधनामय जीवन के लिए अभीप्सा बढ़ने लगी अपने आराध्य से मिलने के लिए पुकार तीव्र होने लगी। इसी में भक्ति की सघनता, प्रेम की तरलता एवं अनुराग की सजलता सभी कुछ थी। बालिका भगवती एक प्रखर युग साधिका के रूप में रूपान्तरित होने लगी थी।

आराध्य-संयोग भूमिका

यथा यथा वृद्धिमवाप तस्याः,
वयस्तथा भाव-विशेषवृद्धिः।
सा चिन्तयामास तमेव गौरं,
युवानमेवं शिव एव सोऽयम्॥ २७॥

अर्थ- जैसे-जैसे भगवती की उम्र बढ़ने लगी, वैसे-वैसे ही भावानुभूतियाँ प्रगाढ़ एवं सघन होने लगी थीं। वे सोचा करतीं कि यह महायोगी कौन है? जिसे वे ध्यान में देखा करती हैं। क्या सचमुच ही भगवान् शिव ने धरती पर अवतार ले लिया है?

ध्यानाय दातुं समयं विशेषं,
इयेष यावन् न क्षुधापिपासा।
तावद् बबाधे परिवारचर्चा,
दध्यौ न दैनन्दिनध्येयमग्ना॥ २८॥

अर्थ- वे अपनी ध्यान-साधना में इतनी डूबी रहती थीं कि अपने खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती थी। परिवार के सदस्य उनकी विचित्र दशा पर चर्चा करते थे, किन्तु वे उनकी बातों पर ध्यान न देती हुई दिन-प्रतिदिन ध्यान-साधना की भाव-दशा में खोती जा रही थीं।

प्रारप्स्यमाने ननु रुद्रवर्षे,
तया कृतासीत् शुभसाधनायाः।
न कर्मकांडाद्युपचारपूजा,
सर्वेषु कालेषु चकार ध्यानम्॥ २९॥

अर्थ- भगवती की साधना ग्यारह-बारह साल की उम्र में ही शुरू हो गई थी। इसमें कहीं कोई दिखावा नहीं था। बस सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते हर समय ध्यान किया करती थीं।

अव्यक्तनादं तु विधातृसृष्टौ,
प्रवर्तमानं सततं यदृच्छम्।
शुश्राव भेरीमुरलीनिनादं,
मृदंग-वीणाशुभशंखवाद्यम्॥ ३०॥

अर्थ- सृष्टि के अणु-परमाणु में जो अव्यक्त नाद है, वह उन्हें हर समय सुनाई देता था। कभी भेरी बजती, कभी मृदंग, कभी वीणा, कभी शंख-ध्वनि होती और कभी सब मिल-जुलकर वाद्यवृन्द सदृश अलौकिक संगीत उत्पन्न करते थे।

ध्यानस्य गाम्भीर्यमये विलासे,
गंगा-तरंगाकलिते सुनादे।

सा दक्षिणेशस्य विशालगेहे,
श्रीरामकृष्णस्य बभौ सुपार्श्वे॥ ३१॥

अर्थ- ध्यान की गहनता में उन्होंने अपने साधनामय अतीत की झलकियाँ देखीं। गंगा की लहरों एवं मन्दिर की घंटियों की गूँज के साथ जो दृश्य उभरे, वे पहले अस्पष्ट थे। बाद में धीरे -धीरे उन्होने स्वयं को दक्षिणेश्वर मन्दिर में रामकृष्ण परमहंस के साथ पाया।

क्रमेण ध्याने परिवर्तमाने,
दृश्यान्तरे सा सहसा कबीरम्।
तं साधुभिः सार्धमवाप्य देशं,
विलोक्यमाना महसा बभूव॥ ३२॥

अर्थ- तभी अचानक उनकी ध्यानस्थ चेतना में दृश्य बदला, ऐसा लगा जैसे वे कहीं बनारस में हैं। सन्त कबीर के साथ उनके जीवन का ताना-बाना बुना हुआ है। अनेक सामान्य-जन उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देख रहे हैं।

ध्यानेन, प्रत्यक्षमभूत् तदा वै,
श्रीरामकृष्णः स कबीर योगी।
यो नित्य ध्याने परिदृश्यते च,
शिवः स्वयं चावततार योगी॥ ३३॥

अर्थ- ध्यान की इस भाव-भूमि में उन्हें प्रत्यक्ष हुआ कि जो कबीर थे, वही रामकृष्ण परमहंस रहे और वही अब यह महायोगी हैं, जो उन्हें नित्य ध्यान में दिखाई दे रहे हैं। स्वयं शिव ने ही इस योगी के रूप में अवतार लिया है।

अनेन सार्धं मम सूत्रबन्धः,
भविष्यतीति प्रतिभाति नूनम्।
या शारदा पारमहंसपत्नी,
लोई कबीरस्य च साहमस्मि॥ ३४॥

अर्थ- इन्हीं शिवावतार महायोगी के साथ मेरा परिणय सूत्र बन्धन होगा, ऐसा लग रहा है। जो रामकृष्ण परमहंस की धर्मपत्नी शारदा तथा सन्त कबीर की पत्नी लोई थी, वही तो मैं हूँ।

प्रथानुरूपं जसवन्तशर्मा,
चकार पुत्र्याश्च विवाहचिन्ताम्।
आराध्य पादेष्वनुरागभावो,
विवर्धते चानुदिनं किशोर्याः॥ ३५॥

अर्थ- सनातन परम्परानुसार भगवती के पिता जसवन्तराव शर्मा भी उनके विवाह की चिन्ता करने लगे। साथ ही किशोरी भगवती का अनुराग भाव भी अपने आराध्य पुरुष के लिए अधिकाधिक बढ़ने लगा।

स्वभावशान्ताऽपि विशेषशान्तिं,
उपेयुषी दैनिक कार्यकाले।
प्रजावतीं वीक्ष्य विशेषसेवां,
चकार लाली गृहसाधनायाम्॥ ३६॥

अर्थ- वे पहले ही शान्त रहा करती थीं। अब वह शान्ति और भी सघन हो गई। इन दिनों वे सर्वथा शान्त-अचंचल रहकर दैनिक क्रिया-कलापों में संलग्न रहतीं। बड़ी भाभी के साथ घर गृहस्थी के कार्यों में विशेष सेवा -पूर्वक लगी रहती थीं।

द्वा अग्रजौ दीनदयाललालौ,
लाली गुणैरत्यधिकं विमूढौ।
तदन्तरे ओमवती स्वसाऽपि,
सोढा गता श्वासुरगेहमध्ये॥ ३७॥

अर्थ- उनके दोनों बड़े भाई दीनदयाल और सुनहरीलाल उनके गुणों से अभिभूत रहते थे। इस बीच बड़ी बहन ओमवती की शादी हो

चुकी थी और वे ससुराल जा चुकी थीं।

ज्येष्ठात्मजाया जसवन्तरावः,
सदाग्रहं वीक्ष्य यदा कदाचित्।
विमोचयामास यदैव लालीं,
तदा सहाया किल गेहकार्ये॥ ३८॥

अर्थ- ओमवती के आग्रह करने पर पिता जसवन्तराव भगवती (लाली) को बीच-बीच में ओमवती के ससुराल छोड़ दिया करते थे। बड़ी बहन को घर के कामों में सहयोग देने के साथ भगवती अपनी ध्यान-साधना का क्रम बनाए रखती थीं।

लोकोत्तरं दाम्पत्यम्

अत्रैव काले परिवारलोकः,
अन्वेषयामास विवाहयोग्यम्।
पिताऽभवत् रूपकिशोरशर्मा,
तस्यैव पुत्रो गुणवान् तपस्वी॥ ३९॥

अर्थ- इसी समय परिवार के लोग भगवती के विवाह योग्य वर की तलाश में लग रहे थे। परिचित जनों से पता लगा कि पंडित रूपकिशोर शर्मा के सुपुत्र अत्यन्त सुन्दर, गुणी एवं तपस्वी हैं।

मासे तपस्ये शुभशुक्लपक्षे,
एकाधिके वैक्रमद्वेसहस्त्रे।
संवत्सरे लग्नशुभे मुहूर्ते,
विवाहसूत्रे प्रतिबद्धबन्धौ॥ ४०॥

अर्थ- फाल्गुन शुक्ल सप्तमी संवत् २००१ का दिन विवाह हेतु सुनिश्चित हुआ एवं शुभ मुहूर्त में आचार्य पं. श्रीराम एवं भगवती देवी का मंगल परिणय सम्पन्न हो गया।

लोकेऽयमासीन्नवजीवनस्य,
आदर्शरूपेण विवाहबन्धः।
संकल्पितोऽभूदृषियुग्मरूपः,
ज्ञानस्य भक्तेश्च विशिष्टयोगः॥ ४१॥

अर्थ- लोगों में यह नव-जीवन का आदर्श विवाह-बन्धन था, जिसमें ऋषि दम्पती जीवन के विशिष्ट उद्देश्य के लिए संकल्पित हुए थे। वस्तुतः यह ज्ञान एवं भक्ति का अभूतपूर्व संयोग था।

पादार्पणानुग्रहपूतभूमि,
बभूव श्रीरामनिवाससद्म।
श्रद्धादयाओमप्रकाशबालाः,
मातृत्ववन्तश्च पुनर्बभूवुः॥ ४२॥

अर्थ- भगवती के साथ पं. श्रीराम शर्मा का विवाह हो जाने पर उनका घर भगवती के पदार्पण से पावन हो गया था। मातृविहीन श्रद्धा, दया एवं ओमप्रकाश, सभी को पुनः मातृ-वात्सल्य प्राप्त हो गया था।

न लौकिकं सम्मिलनं तदासीत्,
शक्तिः शिवा सम्मिलिता शिवेन।
परा प्रकृत्या पुरुषस्य योगः,
नवीनसृष्टेः सृजनस्य बीजम्॥ ४३॥

अर्थ- सौ.काँ. भगवती एवं पं. श्रीराम शर्मा का परिणय-सूत्र में बँधना कोई सामान्य विवाह-बन्धन नहीं था। वस्तुतः यह तो पार्वती का भगवान् शंकर से मिलन था अथवा परा प्रकृति का पुरुष से संयोग होने जैसा ही था। यह मिलन नवीन सृष्टि के सृजन के लिए ही सम्पन्न हुआ था।

न पुत्रप्राप्तेर्भवतीह माता,
संस्कारदानाच्च विकासकार्यात्।

उपार्जिताया: स्वयमात्मशक्ते:,
बीजप्ररोहात् कथिता सुमाता॥ ४४॥

अर्थ- वन्दनीया माताजी का अपने मानस-पुत्रों के प्रति यही कथन था कि पुत्र को जन्म देने मात्र से ही माता नहीं होती। वस्तुत: माता अपनी सन्तानों को सुसंस्कारित बनाने, उनका सर्वतोमुखी विकास करने तथा अपनी उपार्जित आत्मशक्ति का बीजारोपण करने से ही माता सुमाता कही जाती है।

प्रकाशनाच्चानु अखंड ज्योते:,
आगन्तुकानां परिवीक्ष्य संख्याम्।
पुरागृहीतं परिहाय सद्य,
संस्थानमात्तं अधिरूढमद्य॥ ४५॥

अर्थ- परम पूज्य गुरुदेव द्वारा अखण्ड ज्योति के प्रकाशन के कतिपय वर्षों के पश्चात् आगन्तुकों की संख्या बढ़ने लगी थी, अतएव पहले वाले मकान को छोड़कर मथुरा में ही दूसरा मकान किराये पर ले लिया गया था।

संस्थानमागत्य बभूव माता,
न केवलं बालकुमारकाणाम्।
आगन्तुकानां नवदर्शकानां,
वात्सल्य-सेवा-सहकार-वृत्त्या॥ ४६॥

अर्थ- अखण्ड ज्योति संस्थान में आकर रहने के बाद वन्दनीया माताजी बच्चों के साथ-साथ नये आने वाले कार्य-कर्त्ताओं एवं दर्शनार्थियों की भी माताजी हो गई थीं। इसका प्रमुख कारण माताजी का वात्सल्य सहकारयुक्त सेवा भाव था।

चिरेण सुप्ताऽपि दिने दिने सा,
प्रबुद्ध्य ब्राह्मे च मुहूर्तलग्ने।

स्नात्वोपविष्टा जप-साधनायां,
चकार पूजां गुरुवेदमात्रोः ॥ ४७ ॥

अर्थ- आगन्तुकों के देर-सबेर आने तथा गृहकार्य में संलग्न रहने के कारण वन्दनीया माताजी का मध्यरात्रि तक ही सोना हो पाता था, फिर भी वे सूर्योदय से दो घंटे पूर्व ही जग पड़ती थीं। स्नानादि के पश्चात् जप-साधना हेतु बैठतीं एवं गुरुदेव तथा गायत्री माता का पूजन करती थीं।

गुह्यानि केन्द्राणि प्रबुद्धवन्ति,
बभूवुरस्या जप-साधनायाः।
पश्चाज्जपाद् ध्यानपरा विवेश,
पराद्यशक्तेः परिपूर्णतायाम्॥ ४८ ॥

अर्थ- जप साधना के प्रभाव से वन्दनीया माताजी के गुप्त आध्यात्मिकशक्ति केन्द्रों का जागरण हो गया था। जप साधना के पश्चात् ध्यानमग्न होकर माताजी पराशक्ति की पूर्णता में प्रविष्ट हो जाती थीं।

गृहस्थकार्याणि समाप्य माता,
आचार्यवर्यस्य विधायिकार्ये,
पत्राणि सर्वाण्यपि वाचयित्वा।
समुत्तरं दापयति स्म चार्हम्॥ ४९ ॥

अर्थ- घर-गृहस्थी के सभी कार्यों को सम्पन्न करने के पश्चात् वे परमपूज्य गुरुदेव के अत्यावश्यक कार्यों में हाथ बँटाती थीं। आये हुए सभी पत्रों को पढ़कर उनका उचित उत्तर देने में वे गुरुदेव का हाथ बँटाती थीं।

सर्वलोकस्य माता

संस्थानवासाद्यनुवत्सरेषु,
जायात्वमाप प्रसवद्वयस्य।
मृत्युंजयः प्राक् अधिकुक्षिजातः,
तस्यानुजासा नव शैलबाला॥ ५०॥

अर्थ- अखण्डज्योति संस्थान में आकर निवास करने के बाद ही वन्दनीया माताजी दो बच्चों की जन्मदात्री बनी थीं। पहले उनकी कोख से मृत्युंजय (सतीश) का जन्म हुआ तथा बाद में कुमारी शैलबाला उत्पन्न हुईं।

समर्पणस्य प्रखरप्रभावात्,
वज्रं नु पुष्पायितमेव भाति।
आराध्यतादात्म्यमभीप्समाना
वात्सल्यभावं विततं चकार॥ ५१॥

अर्थ- कार्यकर्त्ताओं का मार्गदर्शन करते समय माताजी कहा करती थीं कि समर्पण की प्रखर भावना से वज्र जैसी कठोर शक्तियाँ भी पुष्प जैसी कोमल प्रतीत होने लगती हैं। अपने आराध्य गुरुदेव से अभिन्न रहने के कारण, बच्चों के साथ सभी कार्यकर्त्ताओं एवं आगन्तुकों के साथ उनका वात्सल्यपूर्ण व्यवहार होने लगा ।

अध्युष्य चैतानि दिनानि 'एजू'!
अद्यापि मां बोद्धुमतीव बाला,
यथा सतीशौमप्रकाशयोश्च,
तथा लतीफस्य नु चास्मि माता॥ ५२॥

अर्थ- 'एजू' नाम की गृहकार्य सहायिका स्त्री से माताजी ने एक प्रसंग में यह कहा था कि जैसे मैं ओम् और सतीश की माता हूँ, वैसे ही लतीफ की भी माँ हूँ। वह मनुष्य मात्र में परमात्मा की ज्योति देखकर उदारता का व्यवहार करती थीं।

माताहमस्मीति विदन्तु सर्वे,
आकर्ण्य संजीवन उक्तवांश्च।
गायत्रितत्त्वं प्रतिभासि नूनं ,
यया तपोभूमिरभूत्प्रकाशा॥ ५३॥

अर्थ- एक बार संस्थान में कार्य करने वाले सभी लोगों को सम्बोधित करते हुए वन्दनीया माताजी कहने लगीं- आप सब लोगों को यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि मैं तो आप सबकी माँ ही हूँ। यह सुनकर एक कार्यकर्त्ता- रामसंजीवन कहने लगे की आप तो माताजी तत्त्वत: गायत्री माता ही हैं, जिनसे तपोभूमि प्रकाशित हो रही है।

गायत्री तपोभूमौ प्राण-प्रतिष्ठा

ध्याने मया दृष्टमिदं विचित्रं,
मा मन्दिरे तत्र प्रतिष्ठिताऽस्ति।
जना: सहस्त्रं हृदि प्रार्थयन्त:,
मेधां सुबुद्धिं जनकष्टमुक्तिम्॥ ५४॥

अर्थ- गायत्री तपोभूमि निर्माण की मूल प्रेरणा माताजी के अन्त:करण में उत्पन्न हुई। उन्होंने एक दिन प्रात: ध्यान की भावदशा में देखा कि जगन्माता युगशक्ति-गायत्री के रूप में एक मन्दिर में विद्यमान हैं। असंख्यजन माता का अर्चन पूजन कर रहे हैं और माता से प्रज्ञा, मेधा, सद्बुद्धि के साथ अपनी कष्ट-कठिनाइयों से मुक्ति का वरदान पा रहे हैं।

सामान्यमेतन्नहि मन्दिरं वै,
प्रवर्तमाना विविधा: कलापा:,
हिताय लोकस्य ह संचरन्ति।
सद्ज्ञानधारा: सरितो वहन्ति॥ ५५॥

अर्थ- ध्यान में यह भी देखा कि यह साधारण मन्दिर नहीं है, यहाँ पर लोककल्याण के विविध क्रिया-कलाप चल रहे हैं। यहाँ से सम्पूर्ण जगत् में श्रेष्ठ ज्ञान की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं।

ध्यानावसाने कृतनित्य-कार्या,
प्रकाशयामास निजानुभूतिम्।

आचार्यवर्य्योऽपि तमेव देशं,
स्वमार्गदेष्टुः समुदाजहार॥ ५६॥

अर्थ- ध्यान की समाप्ति के पश्चात् दैनिक गृहकार्य करने के अनन्तर माताजी ने गुरुदेव के समक्ष अपनी अनुभूति प्रकट की। यह सुनकर पू. गुरुदेव ने कहा हमें भी हमारे मार्गदर्शक का ऐसा सूक्ष्म संदेश प्राप्त हुआ है।

सन्देशमादृत्य सुकेन्द्रमीदृक्,
संस्थापयामो विविधैः प्रदेशैः।
आगत्य चाध्यात्मिक-साधनायै,
सम्भावयेरन् हृदि चानुभूतिम्॥ ५७॥

अर्थ- इस सन्देश के अनुसार हमें ऐसा केन्द्र स्थापित करना है, जहाँ देश के विभिन्न भागों से अनेकों साधक आकर अध्यात्म-साधना कर सकें, जिससे उन्हें आध्यात्मिक तत्त्वदर्शन की वास्तविक अनुभूति हो सके।

भवेन्महत् कार्य-विधेर्गणेशं,
यदर्थमावां प्रहितौ धरण्याम्।
शीघ्रं तपोभूमि-विधान-हेतोः,
संकल्पकर्म प्रगतं बभूव॥ ५८॥

अर्थ- इस महान् कार्य का विधिवत् श्रीगणेश होना चाहिए। जिसके लिए हम दोनों को पृथिवी पर भेजा गया है। तपोभूमि निर्माण का संकल्प शीघ्र ही गति पकड़ने लगा।

आचार्यवर्येण नु क्रान्तदृष्ट्या,
विज्ञाय संस्कारधरागृहीता।
दुर्वाससो यत्र तपस्थलीभूः,
चिन्ताऽभवत् निर्मिति-कार्यहेतोः॥ ५९॥

अर्थ- आचार्य पूरी राशि देकर उन्होंने वह जमीन खरीद ली, जहाँ प्राचीन काल में महर्षि दुर्वासा ने तप किया था। भूमि क्रय करने के बाद

अब निर्माण कार्य कैसे किया जाय, यह चिन्ता होने लगी।

आवश्यकस्य द्रविणस्य माभूत्,
चिन्तेति कृत्वा तमुवाच माता।
सर्वाणि वस्त्राभरणानि यानि,
संग्राहयामास प्रसन्नचेताः॥ ६०॥

अर्थ- 'आचार्य जी, आपको अपेक्षित द्रव्य की चिन्ता नहीं होनी चाहिए', ऐसा कहकर माताजी ने अपने समस्त गहने-वस्त्रादि आचार्य जी को सौंप दिये। ऐसा करके माताजी बहुत प्रसन्न दिखाई दे रही थीं।

आभूषणानां अतिमोहपाशे,
बद्धा भवन्ति प्रमुखेन नार्यः।
धर्माद्धि मात्रा प्रतिबुद्धमेतत्,
विद्यातपोभ्यां नु शरीरशोभा॥ ६१॥

अर्थ- यद्यपि सभी महिलाएँ प्रमुख-रूपेण आभूषणों के मोहपाश में आबद्ध रहती हैं, परन्तु माताजी ने दूरदृष्टि से धर्म-परायण होकर यह जान लिया था कि शरीर की शोभा आभूषणों से नहीं, अपितु ज्ञान एवं तप से ही होती है।

तस्मिन् क्षणे सा शुशुभे वनाय,
रामेण साकं वनगामि-सीता।
धन्यानि नेत्राणि भवन्ति तेषां,
पश्यन्ति ये भावविशेषदृष्ट्या॥ ६२॥

अर्थ- उस समय माताजी ऐसी शोभायमान थीं, मानो राम के साथ वनगमन के समय सीताजी जा रही हों। जो पवित्र भावदृष्टि से इस दृश्य को अपनी आँखों में समाहित कर लेते हैं, उनके नेत्र धन्य हो जाते हैं।

व्यधायि चोर्जस्वलशक्तिकेन्द्रं,
ध्याने यथाऽऽलोकितमस्ति मात्रा।

गायत्रिमन्त्राक्षरतुल्यसंख्यैः,
सहस्रतीर्थैरप आनिनाय॥ ६३॥

अर्थ- ध्यानावस्था में माताजी ने जैसा देखा था, वैसा ही आध्यात्मिक ऊर्जा शक्ति का केन्द्र बनकर तैयार हो गया । चौबीस सहस्र तीर्थों का जल एवं पवित्र रज मँगवाकर स्थापना की गई।

संस्थाप्य दिव्याग्निमपो रजांसि,
विधाय चामोघतमाः सुरक्षाः।
ततः प्रचेलुर्युगसत्रनाम्ना,
अध्यात्म-संस्कारमयाः प्रयत्नाः॥ ६४॥

अर्थ- हिमालय के आध्यात्मिक केन्द्र से लाई गई प्राचीन पवित्र अग्नि के साथ तीर्थों के पावन जल एवं रज की स्थापना की गई तथा तपोभूमि के भीतर एवं बाहर अमोघ रक्षा कवच बनाया गया। तदनन्तर आध्यात्मिक संस्कार प्रदान करने के लिए 'युगसाधना' सत्रों का क्रम प्रारम्भ किया गया।

पुत्राः समग्रा अभवन् विशेषाः,
आगन्तुकाश्चाश्रमवासिनश्च।
मातास्मि वो नो जननी समेषां,
संस्कारदात्री हितकारिणी च॥ ६५॥

अर्थ- तपोभूमि में युगसत्रों में आने वाले तथा आश्रम में कार्यकर्त्ता के रूप में रहने वाले समस्त लोग हमारे पुत्र हैं। इस प्रकार मैं तुम्हारी माता हूँ, भले ही मैंने तुम लोगों को जन्म नहीं दिया है, तथापि तुम्हारे हितार्थ शुभसंस्कार देने का काम करने के कारण मैं तुम्हारी माता ही हूँ।

आराध्येन सह साधना

सुसाधकानां तु कृते सदैव,
आचार्यवर्यः शुभमार्गदेष्टा।

मालिन्यपूर्णान् नवसाधकान्तु,
मातैव स्नेहान्मलशोधयित्री॥ ६६॥

अर्थ- शुभ संस्कार युक्त साधकों का मार्गदर्शन करने का कार्य तो पूज्य गुरुदेव ही करते हैं। संस्कारहीन नये साधकों का मल-शोधन तो स्नेह पूर्वक माता ही करती है।

निशीथकाले प्रतिबुध्यते स्म,
उपासनां आसनबन्धधीरा।
माता स्वयं ध्यानसमाधिहेतोः,
छायेव तं मित्रमिवान्वगच्छत्॥ ६७॥

अर्थ- वन्दनीया माताजी मध्यरात्रि के समय उपासना के लिए बैठ जाती थीं। सूर्य का अनुगमन करने वाली छाया के समान ही माताजी गुरुदेव के साथ-साथ ध्यान-समाधि जैसे कार्यों में उनका अनुसरण करती थीं।

योगेन ध्यानेन विधाय सूक्ष्मं,
प्रचंडमूर्जस्वलमात्मदेहम्।
विज्ञाय सिद्धं गुरुगम्यमार्गं,
स्वस्थूलदेहं पृथगाचकार॥ ६८॥

अर्थ- नियमित योग-साधना की प्रगाढ़ता और सघनता से उनका सूक्ष्म शरीर अति तेजस्वी एवं प्रचंड ऊर्जस्वल हो गया था। गुरुदेव द्वारा बताई गई योग की गुह्यविधियों से वे इसे बड़ी आसानी से स्थूल शरीर से पृथक् कर लेती थीं।

यथा यथा योगगतिः समृद्धा,
स्थूलेन देहेन विहाय शिक्षाम्।
समर्जयामास विशेषभूतिं,
सूक्ष्मेण देहेन विलक्षणा सा॥ ६९॥

अर्थ- गुरुदेव तो पहले से ही योग की समस्त उच्चतम साधनाओं में पारंगत थे। अब माताजी भी योग के उच्चतम रहस्यों से अवगत हो गईं। यह स्थिति यहाँ तक पहुँची कि स्थूल देह से किसी भी साधना की जरूरत नहीं रही। सूक्ष्म शरीर से स्वयमेव समस्त योगविभूतियों का अर्जन होने लगा।

पूज्येन सार्धं सहयोगिनी सा,
नैवात्मनः किंचिदभीष्टमाप्तुम्।
दुःखार्त-शिष्यार्तिविमोचनाय ,
आश्वासयामास ह योगशक्त्या, ॥ ७०॥

अर्थ- वे गुरुदेव के साथ साधना के लिए अभी भी बैठती थीं, परन्तु उनके साधनात्मक कार्यों में सहभागी बनने के लिए। ऐसे कार्यों में शिष्यों-भक्तों की पीड़ा और उन पर आए संकटों का निवारण प्रमुख था। इसके लिए वे दोनों ही शिष्यों के पास पहुँच कर उन्हें आश्वासन देते और अपनी योगशक्ति से उनके कष्टों का निवारण कर देते थे।

सा दिव्यलोकानपियोगशक्त्या,
सूक्ष्मेण तन्वा परितश्चरन्ती।
नोदीरयामास कथां कथंचित्,
आराध्य लक्ष्यं परिपालयन्ती॥ ७१॥

अर्थ- साधना के क्षणों में ही जब-तब गुरुदेव के साथ सूक्ष्म शरीर से दिव्य साधना केन्द्रों की यात्रा करतीं। ऐसे प्रसंगों को उन्होंने प्रायः कभी उजागर नहीं किया। इसमें मुख्य रूप से गुरुदेव का निर्देश ही था।

प्रसंगमेकं परिलक्ष्य प्रोचे,
पुत्राः! न युष्माभिरवेतमेतत्।
साक्षात् परब्रह्ममयो गुरुर्वो,
जानीत नो तापसयोगसिद्धम्॥ ७२॥

अर्थ- ऐसे ही एक प्रसंग में उन्होंने बताया- बेटा! तुम लोग जानते नहीं, गुरुदेव कौन हैं। वे मनुष्य देह में साक्षात् ईश्वर हैं। उन्हें कभी सामान्य तपस्वी, सिद्ध और योगी समझने की भूल मत करना।

वार्ताक्रमे सानुविमृश्य प्रोचे,
गोप्यं वरं साधनसिद्धिवार्ताम्।
चर्चा प्रसंगेन, क्षिणोति वर्चः,
जानाति कः किन्नुमयाऽध्यगामि॥ ७३॥

अर्थ- अपनी बातों के क्रम में माता जी ने एक बार कहा था कि साधना के प्रसंग जितने गोपनीय रखे जाएँ, उतना ही अच्छा है। चर्चा करने पर साधना का बल घटता है। ऐसा बताते हुए वे कहतीं- अब मेरी ही ले लो- मैंने क्या-क्या किया है, कोई कुछ जानता है क्या?

शिवशक्ति समागमः

द्विधाऽभवत् शक्तिशिवात्मयोगः,
चक्राणि सर्वाणि विभेद्य नूनम्।
शिवं सहस्त्रारगतं मिलित्वा,
समग्ररूपेण गुरुं प्रपेदे॥ ७४॥

अर्थ- योग-साधना की परम प्रगाढ़ता में शिव और शक्ति परस्पर अन्तर्लीन हो गये थे। शिव और शक्ति का यह अन्तर्मिलन दो रूपों में प्रकट हुआ था। प्रथम रूप में महायोगिनी माताजी की अन्तस्थ कुंडलिनी महाशक्ति परिपूर्ण जागरण के पश्चात् विभिन्न चक्रों का भेदन करती हुई सहस्त्रार-स्थित महाशिव से जा मिली थी।

ददर्श काचित् शिवशक्तिरूपं,
ध्याने प्रगाढे रविमंडलस्थम्।

प्रागाद्यशक्तिर्नु बभूव सैव,
मातृस्वरूपा गुरुदेवरूपा॥ ७५॥

अर्थ- मध्यप्रदेश के ग्रामीण अंचल की एक महिला भक्त शिवरानी देवी ने प्रगाढ़ ध्यान की अवस्था में देखा कि सूर्य मंडलस्थ माता गायत्री ने माताजी का रूप ले लिया है। देखते-देखते परम पूज्य गुरुदेव की दिव्यमूर्ति भी उसी प्रकाश से निकलती दिखती है।

पुनः कदाचित् शिविरं प्रयाता,
पप्रच्छ साचार्यमिदं विनम्रा।
शक्तिस्वरूपा स नु आद्यशक्तिः,
सर्गस्य वन्द्या जननीत्युवाच॥ ७६॥

अर्थ- काफी दिनों बाद गायत्री तपोभूमि में एक शिविर में पहुँचने पर गुरुदेव से इसकी चर्चा की। उत्तर में उन्होंने गम्भीरता से कहा-बेटी शक्तिस्वरूपा आद्यशक्ति माँ ही इस सृष्टि की जननी है।

सा नैकरूपान् विविधान् बिभर्ति,
भावा भवन्तीह यथाऽस्मदीयाः।
सन्दृश्यते तादृशमेव रूपम्।
मातुः प्रसङ्गे ऋतमस्ति चोक्तिः॥ ७७॥

अर्थ- उस आद्यशक्ति के अनेक रूप हैं। जैसी ही हमारी भावना होती है, वैसी ही आकृति बन जाती है। वैसे माताजी के बारे में तुम्हारे जो भाव हैं, वे सही हैं।

विज्ञाय मातुः क्षमतां विचित्रां ,
दिव्यस्वरूपं परिवीक्ष्य तस्याः।
आचार्यदेवोऽविकलं प्रतस्थे,
गिरिं सुमेरुं गुरुदर्शनाय॥ ७८॥

अर्थ- माताजी के दिव्य स्वरूप एवं उनकी दैवी क्षमताओं से अच्छी

तरह परिचित गुरुदेव ने निश्चिंतता पूर्वक हिमालय के लिए प्रस्थान किया।

सञ्चालन सामर्थ्यम्

गते गुरौ वीक्ष्य सहायहीनां,
विशंकमाना बहवो बभूवुः।
उवाच तान् सूनृतयैव वाचा,
जानामि सर्वं न च वक्तुमीहे॥ ७९॥

अर्थ- गुरुदेव के हिमालय चले जाने के बाद माताजी को अकेली देखकर अनेकों को यह आशंका होने लगी थी कि गुरुदेव के बिना माताजी क्या करेंगी। ऐसे शंकालुओं से माताजी ने मधुर वाणी में कहा बेटो! मैं सब कुछ जानती हूँ, पर कहना नहीं चाहती।

माताऽस्मि माता प्रकरोमि स्नेहं,
पुत्रेषु कामं न भवन्तु योग्याः।
जानीथ नूनं युगयोजनेयं,
सर्वेश-जाता स हि वर्धिता च॥ ८०॥

अर्थ- बेटो! मैं तुम सबकी माँ हूँ। मुझे तुमसे बहुत स्नेह है, भले ही मेरे बच्चे अयोग्य होंगे, पर माता होने के कारण मैं सभी से प्यार करती हूँ। मैं तुमको यह बताना चाहती हूँ कि यह युग निर्माण-योजना ईश्वर द्वारा प्रकट हुई है और वे ही इसको भविष्य में सुरक्षित एवं संवर्धित करने वाले हैं।

आचार्यवर्य्यस्य तदैव काले,
यात्रावधिस्तत्र समाप्तिमेतः।
आयातमात्रे युगसूत्रधारे,
समर्पयामास यथानुपूर्वम्॥ ८१॥

अर्थ- इसी बीच पूज्य गुरुदेव की हिमालय यात्रा भी पूरी हुई। वे निश्चित समय पर वापस आए। उनके आते ही माताजी ने संचालन सूत्र फिर से उनके हाथों में सौंप दिया।

अन्तर्विवादं निखिलं विचिन्त्य,
द्वेष्याञ्जनान् संप्रति हर्तु-कामः।
मात्रा निषिद्धः खलु आत्मदेवः,
शाम्यन्तु शाम्यन्तु हि बालिशास्ते॥ ८२॥

अर्थ- अन्तर्यामी गुरुदेव को बिना बताये ही सारी स्थितियाँ पता चल गईं और उन्होंने दोषी जनों के प्रति कठोर कार्यवाही करने का निश्चय किया। पर यहाँ भी माँ की ममता आड़े आ गई। उन्होंने गुरुदेव से कहा- अब रहने भी दीजिए, जैसे भी हैं, मेरे बच्चे हैं।

विज्ञाप्य देवीं युगयोजनायाः,
भविष्यमाणं विततं स्वरूपम्।
इच्छानुसारेण तु लोकमातुः,
विसर्जितास्ते नवजीवनाय॥ ८३॥

अर्थ- जब गुरुदेव ने मिशन के भावी विस्तार का हवाला दिया और माताजी को समझाया, तब माताजी की इच्छा के अनुसार उन दोषी जनों को नया जीवन शुरू करने के लिए विदा कर दिया गया।

आचार्य देवस्य हिमालयस्य,
द्वितीय यात्रावसरे प्रवृत्ता।
बभूव तीर्थस्य सुरूपरेखा,
गर्भे दधे या नवशान्तिकुंजम्॥ ८४॥

अर्थ- परमपूज्य गुरुदेव की दूसरी हिमालय यात्रा के समय ही शान्तिकुञ्ज के निर्माण की परिकल्पना बन गई थी। जिसने भविष्य के नव शान्तिकुञ्ज का रूप ले लिया था।

सुमेरु पार्श्वे गिरिगह्वरेषु,
तपस्विनो ये ऋषयः प्रमुख्याः।

तेषां प्रपेदे सुमतिं विशिष्टाम्,
इत्थं विभिन्नाऽभवदिष्टयात्रा॥ ८५॥

अर्थ- हिमालय की द्वितीय यात्रा में सुमेरु शिखर के पास की कन्दराओं में तपोलीन प्रमुख ऋषियों के दर्शन के पश्चात् उनकी विशिष्ट सुमति भी आध्यात्मिक केन्द्र की स्थापना हेतु प्राप्त हो गई थी। इस दृष्टि से यह यात्रा पहले की यात्रा से अलग ही थी।

मनोनुकूले हिमभूभृतश्च,
पार्श्वे सुरम्ये सुरदीर्घिकायाः।
तटे पवित्रे ह्यवतारलीलाः,
प्रकाशयामास च आद्यशक्तिः॥ ८६॥

अर्थ- आद्यशक्ति ने हिमालय के आँचल में भगवती भागीरथी के सुरम्य तट पर ही अपनी अवतार लीलाएँ रची हैं।

सा लोकमाताऽवतारकाले,
तपस्थलीं पावनगाङ्गभूमिम्।
हिमाचलच्छाय-मनोभिरामां,
लीला प्रसाराय हि निश्चिकाय॥ ८७॥

अर्थ- इसी कारण हमारी वन्दनीया लोक माता ने भी निश्चय किया कि अपनी तपस्थली भी पवित्र भागीरथी के तट पर हिमालय की छाया में ही लीला प्रसार हेतु बनानी आवश्यक है।

चैतन्य वीरेश्वर साहचर्यात्,
लीलापतिः सर्वविधिव्यवस्थाम्।
तपोभुवः पूर्णसमर्पणेन,
कर्तुं प्रवृत्तः ऋषियुग्मभक्त्या॥ ८८॥

अर्थ- चार-पाँच वर्षों में ही गायत्री तपोभूमि को सँभालने व भली प्रकार चलाने के लिए पं. लीलापत शर्मा, वीरेश्वर उपाध्याय, द्वारिका प्रसाद

सभी लोगों के लिए गुरुदेव व माताजी आराध्य थे।

दिव्यसाधनास्थली

ध्यानेन दृष्टं ऋषियुग्मद्वारा,
स्थलं हरिद्वारसमीपमासीत्।
विश्वादिमित्रस्य तपोधनस्य,
यत्रावतीर्णा हृदि चाद्यशक्तिः॥ ८९॥

अर्थ- पूज्य गुरुदेव एवं वन्दनीया माताजी ने ध्यान के द्वारा यह देख लिया था कि महर्षि विश्वामित्र की तपस्थली कहीं हरिद्वार के समीप ही है, जहाँ आद्यशक्ति उन विश्वामित्र जी के हृदय में अवतरित हुई थीं।

तस्यैव स्थानस्य गवेषणाय,
स्थलानि भूयांसि विलोकयन्सः।
ततः समासाद्य नु सप्तगङ्गम्,
निश्चित्य भूमिं कृतवान्स्वहस्ते॥ ९०॥

अर्थ- उसी विशिष्ट स्थान की खोज करते हुए पू. गुरुदेव ने कई स्थानों का अवलोकन किया। अन्त में सप्त सरोवर के निकट उसी भूमि को खोज लिया। जुलाई सन् १९६८ में वहाँ की डेढ़ एकड़ जमीन उन्नीस हजार रुपये में खरीद ली गई।

ततः प्रवृत्ते भवनस्य कार्ये,
यदा कदाऽऽगत्य ददर्श संस्थाम्।
सहैव मात्रा विधिवत् विचार्य,
समापयत् शेषकुटुम्बकार्यम्॥ ९१॥

अर्थ- भूमि क्रय करने के साथ ही निर्माण कार्य भी आरम्भ कर दिया गया। बीच-बीच में गुरुदेव स्वयं आकर कार्य की गतिविधि देख जाते थे। उधर मथुरा में माताजी से भली-भाँति विचार विमर्श करके कुटुम्ब की शेष जिम्मेदारी भी पूरी की गई।

विधाय पूर्वं तु सतीशलग्नं,
समर्प्य चाखंडन-ज्योति-संस्थाम्।
दत्त्वा च वध्वे गृहकार्यजातं,
निर्वर्तयामास सुताविवाहम्॥ ९२॥

अर्थ- पहले अपने पुत्र सतीश का विवाह सम्पन्न किया और उनको अखण्ड ज्योति के प्रकाशन का कार्य सौंप दिया। सम्पूर्ण गृहकार्य की जिम्मेदारी सतीश की बहू को सम्हलवाकर तब अपनी कन्या शैलबाला का विवाह कार्य भी निपटा दिया।

आचार्यवर्यस्य तृतीय यात्रा,
अभूतपूर्वा हिमभूभृतश्च।
यतो हि तावन्नहि निश्चितं यत्,
आज्ञा गुरूणां ननु कीदृशी स्यात्॥ ९३॥

अर्थ- अब गुरुदेव की हिमालय की तृतीय यात्रा का समय आ गया। यह यात्रा अभूतपूर्व थी। इस अर्थ में अभूतपूर्व थी कि इस यात्रा से वापस आने की मार्गदर्शक की अनुमति-प्राप्त होगी या नहीं? हो सकता है मार्गदर्शक वहीं ठहरने व तप करने की अनुमति दे देवें।

दत्त्वा स्ववीर्यतपसोश्च महानुदानं,
ये पोषिताः ननु वियोगभवं समेषाम्।
तेषां गुरोर्हृदयदुःखमभूदसह्यं,
यत्पत्रिकासु लिखितं समपाठकेभ्यः॥ ९४॥

अर्थ- जिन्हें अपना अंग-अवयव, अपने प्राणों का अनुदान देकर पाला, उनसे विदाई गुरुदेव के लिए हृदयविदारक थी। अपने हृदय की इस व्यथा को वे पिछले साल-डेढ़ साल से अखण्ड ज्योति के पृष्ठों में लिखकर भी परिजनों को अवगत करा रहे थे।

सोढुं न शक्ताऽपि बभूव तूष्णीं,
मातुस्तु दुःखं सुगरिष्ठमासीत्।
पुत्रं सुतां पुत्रवधूं स्वपौत्रीं,
विहाय गन्ता स्वजनैः सहैव॥ ९५॥

अर्थ- भावमयी माताजी सब कुछ सहकर भी मौन थीं, जबकि उनके हृदय की व्यथा गुरुदेव से असंख्य गुनी गहरी थी। ३ जून सन् १९७१ को लाडली बेटी शैलबाला की शादी हुई थी। अपने सुपुत्र सतीश, बहू निर्मल एवं पौत्री गुड़िया इन सभी को छोड़कर जाना था। भावमयी माताजी को बिलखते हुए अपने बच्चों से अलग होना था।

पुत्रा असंख्या रुरुदुर्जनन्याः,
उपस्थिता ये नु वियोगकाले।
गम्येत पित्रा हिमवान् प्रकामं,
मा गास्त्वमत्रैव सुतिष्ठ मातः॥ ९६॥

अर्थ- गुरुदेव एवं माताजी को विदाई देने के लिए हजारों भक्त एवं शिष्य-जन आये थे। उनमें शायद हर एक की भावनाएँ व्याकुल होकर यही कह रही थीं कि पिता हमें छोड़कर महातप के लिए हिमालय जा रहे हैं, हम बच्चों के लिए तुम्हीं रुक जाओ माँ।

गुरोः सदारस्य हि स्नेहपुत्री,
विप्रस्थिता स्वप्रणवेन साकम्।
द्वित्राः प्रमुख्याः सहयोगभाजः,
तत्रैव तस्थुश्च तपोधिभूमौ॥ ९७॥

अर्थ- पू. गुरुदेव व माताजी की लाडली सुपुत्री शैलबाला अपने सौभाग्य सिन्दूर डॉ. प्रणव पण्ड्या के साथ विदा हुईं। एक-एक करके सभी परिजन विदा हुए। पं. लीलापत जी, पं. वीरेश्वर जी आदि दो-तीन समर्पित कार्यकर्त्ता तपोभूमि का कार्य सँभालने हेतु वहीं रहे।

प्रस्थानं शान्तिकुञ्जे

आराध्यदेवेन सहैव माता,
गता सहायैः सह शान्तिकुंजम्।
संरक्षयामास अखंडदीपं,
यात्रेयमित्थं विधिवत् समाप्ता॥ ९८॥

अर्थ- पूज्य गुरुदेव के साथ ममतामयी माँ ने शान्तिकुञ्ज के लिए प्रस्थान किया। साथ में वर्षों की तपः साधना से सिद्ध अखण्ड दीपक को सँभालते हुए दो-तीन कार्यकर्त्ता थे। यह यात्रा भी पूर्ण हुई।

प्रतीक्षमाणस्तु भविष्ययात्रा,-
दिनं नु तत्रैव उवास देवः।
यदर्थमेकैकमपाकरोत् सा,
विश्लेषयामास तमेव माता॥ ९९॥

अर्थ- निश्चित यात्रा दिवस की प्रतीक्षा करते हुए गुरुदेव शान्तिकुञ्ज में ही कुछ दिन रहे। पर आखिर में माताजी को उन्हें तप के लिए हिमालय की ओर विदा करना ही था, जिनके एक इंगित पर घर-परिवार परिजन सबको पलभर में छोड़ दिया, आज वही उनको छोड़कर तप हेतु हिमालय जा रहे थे।

विश्लेषदुःखस्य पलानि सोढुं,
न कोऽपि शक्तः किमु तत्र माता।
तथापि लोकस्य हिताय देवी,
आराध्यदेवं विससर्ज गन्तुम्॥ १००॥

अर्थ- यह वियोग बड़ा कठोर था। विदाई के ये पल बड़े ही वेदनामय थे, पर इस करुण वेदना को हर हाल में सहना ही था। विश्वहित में अपने आराध्य की विदाई के इस महाविष को शान्तभाव से पीने के अलावा कोई चारा नहीं था।

विहाय निद्रावशगान् समेतान्,
संपृच्छ्य देवीं हिमवन्तमेकः।
जगाम प्रातर्ह्यनुगंगमार्गं
साऽऽश्वासयामास समान् प्रबुद्धान्॥ १०१॥

अर्थ- एक दिन प्रातः गुरुदेव हिमालय के लिए चले गये। ज़िस समय वे गए, उस समय माताजी को छोड़कर अन्य सभी लोग सोए हुए थे। जगने पर माताजी ने सबको सँभाला, दिलासा दी, सान्त्वना दी।

द्वित्रान् विमुच्यात्र गताश्च सर्वे,
माता नु शेषैः परिसेव्यमाना।
संयापयामास दिनानशेषान्,
तदेदृगासीन्नहि शान्तिकुंजम्॥ १०२॥

अर्थ- केवल वे ही दो तीन लोग बचे, जिनको माता जी के साथ रहकर उनकी सेवा का सौभाग्य मिला था। उन्हीं के साथ अपने आराध्य का चिंतन करते हुए वे शान्तिकुञ्ज में अपने प्रारम्भिक दिनों को गुजारने लगीं। उस समय का शान्तिकुञ्ज आज की तरह विस्तृत नहीं था।

कक्षास्तु द्वित्रा अभवन्तदात्र,
अद्यापि यत्रास्ति अखंडदीपः।
जलाय पेयाय बभूव कूपः,
शोभामयी चाश्रमधेनुरेका॥ १०३॥

अर्थ- दो-तीन कमरे बने हुए थे, जहाँ आज अखण्ड दीप स्थापित है। पीने के पानी के लिए एक कुआँ था। एक गाय थी, जिसके घी से अखण्ड दीप प्रकाशित होता था।

गहनसाधनारता माता

प्रस्थीयमाने गुरुणा हिमाद्रिं,
माता बभूवोग्रतपस्सुलीना।

उद्भास्यमानं तपसः प्रकाशात्,
तदाऽदरीदृश्यत शान्तिकुञ्जम्॥ १०४॥

अर्थ- परमपूज्य गुरुदेव के हिमालय-प्रस्थान के बाद माताजी के सम्पूर्ण जीवन में तप की सघनता छा गई। इस तप की ऊर्जा के स्पन्दन से शान्तिकुञ्ज का कण-कण अलौकिक दिव्यता से उद्भासित हो गया।

नारीद्वयं भोजनसिद्धि-हेतोः,
बभूव मात्रा सह बालिकाः षट्।
तासां हि शिक्षा-भरणादिभारं,
उवाह माता स्वयमेव साधु॥ १०५॥

अर्थ- शारदा एवं रुक्मिणी नाम की दो महिलाएँ भोजन आदि में सहयोग देने के लिए थीं। इस शुरुआती दौर में माताजी के साथ रहने वाली छः बालिकाएँ भी थीं। इन बालिकाओं के पठन-पाठन, खान-पान, सार-सँभाल आदि की सारी व्यवस्था वे स्वयं करती थीं।

हरीतिमा हृद्य-मनोहरा च,
फलैर्विनम्रास्तरवः सुछायाः।
संभूय सर्वाणि तपोवनस्य,
सौन्दर्यसृष्टिं परमां वितेनुः॥ १०६॥

अर्थ- मन को सहज ही भाने वाली हरियाली हरे भरे कुंजों की छाया, कुछ थोड़े से ही सही पर फलदार और छायादार पेड़ सब मिलकर यहाँ के वातावरण में बड़े ही निर्मल सौन्दर्य की सृष्टि करते थे।

कुर्वन्ति पुत्राः स्खलितं कदाचित्,
मया विधेया क्षतिपूर्तिरिषा।
प्रायस्य चित्तस्य विधानहेतोः,
निरन्तरं साधनतत्पराऽहम्॥ १०७॥

अर्थ- कार्यकर्त्ताओं को सम्बोधित करते हुए माताजी ने एक बार कहा-

बेटो! जब बच्चे कोई भी गलती करते हैं, तो माता को ही उसकी क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है। मैं माँ हूँ। अतः यह सब मुझे ही प्रायश्चित्त करने के लिए निरन्तर सूक्ष्म शरीर से साधना करनी पड़ती है।

संकल्प एषोऽस्ति ममात्रक्षेत्रे,
आध्यात्मिकोर्जाऽक्षयकोषवृद्धिम्।
विधातुमिच्छामि यतो भविष्ये,
सेत्स्यन्ति कार्याणि, स्वयं महन्ति॥ १०८॥

अर्थ- बच्चो! मैंने संकल्प किया है कि इस शान्तिकुञ्ज क्षेत्र में आध्यात्मिक ऊर्जा का अक्षय भण्डार बढ़ाने के लिए निरन्तर विशेष साधना करनी है; क्योंकि भविष्य में यहाँ से अपने आप ही महान् कार्य सम्पन्न होते चले जायेंगे।

येऽत्रागमिष्यन्ति च साधनायै,
श्रद्धामया भावविशेषपूर्णाः।
अल्पप्रयासेन भवन्ति तेषां,
प्राणा नु प्रत्यावृतिमत्र सत्यम्॥ १०९॥

अर्थ- बच्चो! जो परिजन यहाँ विशेष श्रद्धा एवं भावना पूर्वक साधना करने के लिए आएँगे, साधारण प्रयास से ही उनके प्राणों का प्रत्यावर्तन हो जाएगा, इसमें सन्देह नहीं है।

परस्परं भावविभावयोश्च,
आदान-संप्रेषण-वैध-शैल्याम्।
हिमालयात् शान्तिनिकुंजगर्भे,
संचारसन्देशगतिश्चचाल॥ ११०॥

अर्थ- माताजी और गुरुदेव के बीच भाव-सन्देशों का आदान-प्रदान होता रहता था। धवल शुभ्र शिखरों वाले हिमालय की गहनताओं में तपोलीन गुरुदेव और हरिद्वार की दिव्य तपस्थली शान्तिकुञ्ज में साधनारत

माताजी एक दूसरे की परिस्थिति एवं भावदशा को अपने हृदय की गहराइयों में सतत अनुभव करते थे।

तपोनिधेश्चाक्षय-कोषवृध्यै,
ततापमाता ननु शान्तिकुञ्जे।
हिमाद्रिकेन्द्राच्च गुरुस्तथैव,
पाकस्य सेनां विजितां चकार॥ १११॥

अर्थ- अक्षय तप:कोश की समृद्धि के लिए माताजी शान्तिकुञ्ज में सूक्ष्म-साधना में लीन रहती थीं। उधर पूज्य गुरुदेव हिमालय के आध्यात्मिक केन्द्र में आसुर-तत्त्वों के विनाश हेतु तपोलीन थे, इसी से पाक की ९० हजार सेना पर भारत की जीत हुई थी।

अमानुषाचार-विभीषिकाया:,
पलायमानान् शरणार्थिनश्च।
मानेकशारक्षित-वीरयोधा,
लक्षाधिकान्नागरिकान् ररक्षु:॥ ११२॥

अर्थ- पाक सेना के अमानुषिक अत्याचारों से पलायमान बाँगला देश के लाखों नागरिकों को भारतीय सैनिकों ने अपने प्रसिद्ध सेनापति मानेकशा के नेतृत्व में बचा लिया था।

समग्रराष्ट्रस्य विनाशकारि,
अस्तित्वरक्षार्थमभून्नियुद्धम्।
अराति-सैन्यानि शतं-सहस्रं,
विजित्य कारागृहमर्पितानि॥ ११३॥

अर्थ- समूचे राष्ट्र के लिए यह बड़ा कठिन दौर था। समस्याओं के इस जटिल चक्रव्यूह के अनेक चक्र थे। राष्ट्र के कर्णधारों को कूटनीतिक मोरचे पर घेरने की कोशिश हो रही थी। पाक सेना के सैकड़ों-हजारों सैनिकों को भारत ने सेनानायक सहित बन्दी बना लिया था।

प्रत्यर्थिभूतोऽपि निवृत्त एव,
अमेरिका-सप्तमपोतसंघः।
नवीनभूगोल-जनिर्बभूव,
ऐतिह्यमासीद्रचितं विचित्रम्॥ ११४॥

अर्थ- विश्व का सबसे शक्तिशाली देश दुश्मन को हर तरह से सहायता पहुँचाने में जुटा था। यहाँ तक कि उसका शक्तिशाली सातवाँ बेड़ा भी चला आ रहा था। पर अचानक बाजी पलट गई । नया भूगोल रचा गया। विश्व के मानचित्र में नये देश का उद्भव हुआ। दुनिया के इतिहास में पहली बार ९० हजार हथियार बन्द सेना ने अपने जनरल नियाजी के साथ घुटने टेक कर आत्मसमर्पण किया। भारत ने विजय दिवस मनाया, बाँग्लादेश ने अपना जन्म दिवस ।

तृतीययात्रार्थमभिप्रयाते,
गुरौ न निर्णीतमभून् निवृत्तिः।
तथापि मातुस्त्वनुमीय हार्दं,
न्यवर्तताशु प्रतिवेशनाय॥ ११५॥

अर्थ- बात-चीत के क्रम में माताजी ने कहा, जब गुरुजी सन् १९७१ में हिमालय गये थे, तब उम्मीद यही थी कि अब वे शायद न लौटें। बच्चों की विकलता ने मुझे बड़ा बेचैन कर दिया, गुरुदेव ने मेरी हार्दिक बेचैनी समझी और वे वापस आ गये।

निवृत्य दूरस्थनिवासि-पौरान्,
समुत्तरं दातुमुपेयिवान् सः।
पूर्वाफ्रिकां तोयनिधिं परेत्य,
प्रवास एषश्च बभूव चित्रम्॥ ११६॥

अर्थ- वापस आने के बाद गुरुदेव सबसे पहले सुदूर वास करने वाले प्रवासी परिजनों की पुकार का उत्तर देने के लिए अफ्रीका गये। सन् १९७२ में गुरुदेव ने अपनी यह यात्रा पानी वाले जहाज से सम्पन्न की। उनका यह प्रवास आन्तरिक रूप से कई असाधारण अनुभूतियों से भरा रहा।

प्राणप्रत्यावर्तनक्रमाः

आयोजनं पंचदिनात्मकानां,
बभूव प्रत्यावृतिसत्रकाणाम्।
एतेषु सत्रेषु समग्रदेशात्,
गृहीतभागाः स्वजना बभूवुः॥ ११७॥

अर्थ- वहाँ से लौटने पर उन्होंने सन् १९७३ में पाँच दिवसीय प्राण-प्रत्यावर्तन सत्रों का आयोजन किया। शान्तिकुञ्ज में आयोजित होने वाले ये सबसे पहले साधना सत्र थे। इनमें देशभर के परिजनों ने भाग लिया और अपने प्राणों के प्रत्यावर्तन की अनुभूति की।

गुरूपदिष्टाः कृतसाधना ये,
गुरोर्महाप्राणगतं सदंशम्।
भवन्तु धर्तुं सततं समर्थाः,
विश्वस्य मातुः पयसां रसज्ञाः॥ ११८॥

अर्थ- प्रत्यावर्तन सत्र के पाँच दिनों में साधकगण एकान्त वास में गुरुदेव द्वारा बताई गई कई तरह की सरल, किन्तु प्रभावकारी साधनाएँ करते रहे। इन साधनाओं का उद्देश्य साधकों के प्राणों को उच्चस्तरीय आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए ग्रहणशील बनाना था; ताकि वे गुरुदेव के महाप्राण के किसी लघु अंश को ग्रहण व धारण करने में समर्थ हो सकें। इस साधना में साधकों को भोजन व औषधि कल्प के माध्यम से माताजी की प्राण-सुधा पीने को मिलती थी।

प्रारम्भकालात् दशभिश्च वर्षैः,
सत्राण्यनेकानि निरन्तराणि।
आयोजितान्येषु सहस्रसंख्याः,
मातुर्गुरोर्योग-विभूतिमापुः॥ ११९॥

अर्थ- इन शिविरों से लेकर लगभग एक दशक की अवधि तक शान्तिकुञ्ज में अनेक तरह के साधना सत्रों का आयोजन-संचालन हुआ। इनमें भागीदारी करने वाले देशभर के हजारों साधकों ने परमपूज्य गुरुदेव के साथ माताजी की तपःशक्ति और योगविभूतियों का साक्षात्कार किया।

एषाऽवधिः स्वर्णयुगो बभूव,
अत्रान्तरे प्राणवशैलजेऽपि।
उपस्थिते ब्रह्मविवर्चसाख्यः,
संस्थापितः शोधकरो विभागः॥ १२०॥

अर्थ- यह अवधि शान्तिकुञ्ज के स्वर्णिम कालों में से एक थी। इसी अवधि सन् १९७८ में माताजी को सहयोग देने के लिए शैलदीदी एवं डॉ. प्रणव पण्ड्या का आगमन हुआ। अध्यात्म के वैज्ञानिक आयाम को प्रतिष्ठित करने के लिए ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना हुई।

तामादिशक्तिं युगशक्तिरूपे,
प्रस्थापने नूतनमाभियानम्।
संचालितं स्थापितशक्तिपीठैः,
तीर्थेषु विंशत्यधिकेषु देवैः॥ १२१॥

अर्थ- इसी के साथ आदिशक्ति जगदम्बा को युगशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए परम पूज्य गुरुदेव ने एक नया अभियान छेड़ा। इस अभियान को गति देने के लिए गुरुदेव ने स्वयं देशभर की यात्राएँ कीं। प्रथम चरण में सम्पूर्ण देश के चुने हुए पवित्र तीर्थ स्थानों पर चौबीस शक्तिपीठ स्थापित किए।

शान्तिकुञ्जस्य सूत्रसञ्चालनम्

ययौ यदा स्थापनकार्यहेतोः,
स शक्तिपीठेषु तदादिशक्तेः।
उद्बोधयामास तदा स्वपत्रैः,
संचालिका स्यान्मिशनस्य माता॥ १२२॥

अर्थ- शक्तिपीठों में आदिशक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए जब वे प्रवास पर गए, तब वे माताजी को प्रतिदिन एक पत्र लिखकर अपने कार्यों का ब्योरा भेजा करते थे। इन सभी पत्रों में यदि किसी भी एक सार-तत्त्व की खोज की जाए, तो वह यही है कि गुरुदेव माताजी को मिशन के प्रत्यक्ष सूत्र-संचालन हेतु तैयार कर रहे थे।

समाप्तिमेते तु प्रवासकार्ये,
आचक्रमे चासुरता गुरून् वै।
प्रारब्धख्रिस्ताब्द चतुः अशीतौ,
प्रवर्तमाने ननु कल्पसत्रे॥ १२३॥

अर्थ- शक्तिपीठों का प्रवास समाप्त होने के कुछ ही समय बाद गुरुदेव पर असुरता ने आक्रमण किया। यह घटना सन् १९८४ के प्रारम्भ की है। आसुरी शक्तियों ने अपने नीच गुणों के अनुरूप एक व्यक्ति को माध्यम बनाकर गुरुदेव पर आक्रमण किया। उस समय शान्तिकुञ्ज में कल्प साधना सत्र चल रहे थे।

बभूव सिद्धं स्वयमेव चैतत्,
मात्सर्यभावोपहृतात्मनां हि।
स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि,
पलाययामास गुरुः स्वयं तम्॥ १२४॥

अर्थ- उन दिनों गुरुदेव सभी के लिए प्रायः सभी समय सर्वसुलभ भी

हुआ करते थे। इसी का लाभ उठाकर वह दुष्ट व्यक्ति ऊपर गया और उसने उन पर प्राण-घातक हमला किया। करुणामूर्ति गुरुदेव ने स्वयं ही उस कायर और डरपोक को भाग जाने का अवसर दिया।

प्रवर्धमानं असुरं विहन्तुं,
अंगीकृतस्तेन हि सूक्ष्मयोगः।
तृतीययुद्धस्य विभीषिकां सः,
निवारयामास गुरुर्महान् नः॥ १२५॥

अर्थ- यह एक चुनौती थी, जिसे गुरुदेव ने प्रसन्न भाव से स्वीकार किया और वे असुरता को समर्थ ढंग से उत्तर देने के लिए सूक्ष्मीकरण साधना में चले गये। परिपूर्ण एकान्त में चलने वाली इस साधना का उद्देश्य विश्वसुधा पर छाते जा रहे आसुरी आतंक को निरस्त करना था। साथ ही तृतीय विश्वयुद्ध की संभावनाओं को समाप्त करना था।

चतुर्थवारं गुरुदेव-यात्रा,
सूक्ष्मेन देहेन बभूव माता।
स्थूलं शरीरं परिरक्षते स्म,
उपार्जितात्यन्तसमर्थशक्त्या॥ १२६॥

अर्थ- गुरुदेव को चौथी बार हिमालय यात्रा करनी पड़ी; लेकिन इस बार की यात्रा उन्होंने सूक्ष्मशरीर से की। इस दौरान माताजी ने अपनी समर्थ साधना शक्ति से गुरुदेव के स्थूल शरीर की आसुरी प्रकोपों से रक्षा की। इस हिमालय यात्रा में गुरुदेव को उनके द्वारा की जाने वाली अलौकिक साधना का विधि-विधान बताया गया।

सूक्ष्मीक्रिया साधन-कार्यहेतोः,
निर्देश-आसादि गुरोर्ऋषीणाम्।
इतश्चलोकाननुकम्पयन्ती,
ववर्ष चाशीर्भिरलं वदान्या॥ १२७॥

अर्थ- मार्गदर्शक सत्ता एवं हिमालयवासी ऋषि सत्ताओं के सम्मिलित निर्देशन के अनुरूप परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी सूक्ष्मीकरण साधना का कार्यक्रम बनाया। परम वन्दनीया माताजी पर दोहरी जिम्मेदारी आ पड़ी। एक ओर तो गुरुदेव की साधना में समर्थ सहयोग करना और दूसरी ओर गुरुदेव से भाँति-भाँति की आशाएँ लगाए हुए नादान बच्चों पर कृपा करके अनुदानों की वर्षा करना।

चमत्कृतिर्बह्वी दृष्ट्वा,
लोकैर्भौतिक-जीवने।
कृपां करोति नो माता,
करोति स्नेहकातरा॥ १२८॥

अर्थ- परिजनों ने अपने भौतिक जीवन में विभिन्न प्रकार के चमत्कार देखे हैं। अनेक प्रकार की समस्याएँ माताजी अपनी तपःशक्ति के प्रभाव से पल भर में हल कर देती थीं। जब परिजन आकर कहते माताजी आपकी कृपा से सब कुछ एकदम ठीक हो गया। उत्तर में वे कहतीं हाँ बेटा सो तो ठीक है, पर तू अपनी एक बात में सुधार कर ले। माँ अपने बच्चों पर कृपा नहीं करती, उन्हें प्यार करती है।

ज्ञातं परिजनैः सम्यक्,
त्वं माता हृदयेश्वरी।
सम्पन्ना दिव्यभूतीनां,
अन्तर्यामित्वमस्ति ते॥ १२९॥

अर्थ- आगन्तुक परिजन जब उनसे मिलने के लिए आते, तो वे उन्हें अपने सामने बिठाकर बड़े ही प्यार से भोजन करातीं। खाने वालों को हैरानी होती कि माताजी को कैसे पता कि मुझे यह चीज सबसे ज्यादा पसन्द है और मैं आज आने वाला हूँ, पर यह हैरानी ज्यादा देर तक नहीं टिकती, क्योंकि लगातार के अनुभवों ने उन्हें विश्वास दिला दिया था कि

उनकी माँ अन्तर्यामी होने के साथ योग की दिव्यविभूतियों से सम्पन्न हैं।

रचनावीरभद्राणां,
जाग्रती विश्वकुंडली।
रक्षणे दिव्यशक्तीनां,
प्रावर्तेतां दिने-दिने॥ १३०॥

अर्थ- गुरुदेव के द्वारा सम्पन्न की जाने वाली विश्वकुंडलिनी के जागरण व पाँच वीरभद्रों के निर्माण जैसी क्रियाएँ माताजी की दिव्य शक्तियों के संरक्षण में चल रही थीं।

सन्तानवत्सला माता

स्वसाधनोपसंहारे,
गुरुः चर्चापरोऽब्रवीत्।
न केवलं यूयं वत्साः,
विन्दामो मातुराशिषः॥ १३१॥

अर्थ- इस साधना के उपरांत बाहर निकलने पर गुरुदेव ने चर्चा करते हुए एक बातचीत में कहा था- 'मात्र तुम्हीं लोगों को ही माताजी के आशीष नहीं मिलते, उनके आशीष हमें भी मिलते हैं।'

पुनर्जगादमोदन्सः,
सर्वेषां मातृभावतः।
स्वमातुरुदरान्माता,
मातृभूता ह्यजायत॥ १३२॥

अर्थ- फिर वे हँसते हुए बोले- 'माताजी अपनी माँ के पेट से ही माताजी होकर पैदा हुई हैं। वे एक साथ सभी की माँ हैं।'

इदं शरीरं पश्यन्तु,
रक्षितं मातृकंपया।

प्रयोगा जटिलाः सर्वे,
सिद्धा मातृत्व-संबलात्॥ १३३॥

अर्थ- कुछ देर ठहर कर अपने शरीर की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा- यह शरीर अब तक उन्हीं की देख-भाल के बल पर टिका हुआ है। मेरे जीवन के सारे जटिल प्रयोग उनके मातृत्व के संरक्षण के बल पर ही संभव हुए हैं।

सम्पादिते सूक्ष्मक्रियाप्रयोगे,
उद्युक्त आसीन् नवलक्ष्यमैतुं।
युगीयनिर्माणविधिं समग्रं,
उत्थापने शान्तिनिकुञ्जपुञ्जम्॥ १३४॥

अर्थ- सूक्ष्मीकरण साधना के बाद से ही प.पू. गुरुदेव शान्तिकुञ्ज व सम्पूर्ण युग-निर्माण मिशन को सर्वथा नये आयाम में पहुँचाने में जुटे थे। इसके लिए उन्होंने अपने लेखन, साधना आदि नियमित कार्यों के साथ ही कार्यकर्त्ताओं को तरह-तरह से प्रशिक्षित करना प्रारम्भ कर दिया था।

संचालिता नित्य विचारगोष्ठ्यः ,
भविष्यकार्यस्य निदर्शनाय।
व्यलेखि साहित्यमभूतपूर्वं,
आरब्धवान् कार्यकरप्रशिक्षाम्॥ १३५॥

अर्थ- सारे दिन एक के बाद एक गोष्ठियाँ चलती रहतीं। इन गोष्ठियों में वे भविष्य में होने वाले कार्यों का खुलासा करते, नई योजनाएँ बनाते व समझाते। वे इन दिनों नई-नई पुस्तकों के रूप में क्रान्तिधर्मी साहित्य का भी सृजन कर रहे थे।

शिवसङ्कल्पो मातुः

शक्तिस्वरूपा ननु मातृशक्तिः,
बुबोध संकल्पमिमं गुरूणाम्।

नैवं कदाचित् वितथाः प्रयत्नाः,
सत्यस्य साक्षाद् गुरुदेवमूर्तिः॥ १३६॥

अर्थ- शक्ति-स्वरूपा माताजी गुरुदेव के शिवसंकल्प से अवगत थीं। उन्हें भली प्रकार मालूम था कि सत्य के मूर्तिमान् स्वरूप गुरुदेव के संकल्प व योजनाएँ कभी मिथ्या नहीं हो सकतीं।

वर्षे नवाशीतितमे समाप्ते,
वार्ताक्रमे तथ्यमुवाच देवः।
हास्यामि जीर्णं तनुमेतदाशु,
स्थास्यामि मातुर्वपुषा सहैव॥ १३७॥

अर्थ- वर्ष १९८९ के अन्त तक प्रायः सम्पूर्ण क्रान्तिधर्मी साहित्य प्रकाश में आ गया। इन दिनों वे बातचीत के क्रम में यह बता दिया करते थे कि वे सूक्ष्म जगत् के परिशोधन के लिए अब पूरी तरह से सूक्ष्मलोक में डेरा जमाएँगे। बातचीत के क्रम में उन्होंने कहा- जैसे लोग अपना कुर्ता उतार देते हैं, वैसे ही मैं यह स्थूल शरीर उतार कर फेक दूँगा। कहाँ रहेंगे? इस जिज्ञासा के उत्तर में उन्होंने कहा- और कहाँ? सारा काम करते हुए मैं एक अंश में माताजी के भीतर रहूँगा।

वसन्तपंचम्यवकाशकाले,
सन्देश आलेखिमहामहिम्ना।
स्पष्टीकृतं तत्र नु भाविकार्यम्,
वाचं यमोऽभूच्च ततः परं सः॥ १३८॥

अर्थ- सन् १९९० की वसन्त पञ्चमी के अवसर पर परम पूज्य गुरुदेव ने एक पत्रक लिखा 'वसन्त-पर्व पर महाकाल का सन्देश'। इस पत्रक में उन्होंने भावी क्रिया-कलापों को स्पष्ट किया था। अपनी इसी योजना के अनुसार वे वसन्त पंचमी के दिन ही प्रणाम के बाद से पुनः परिपूर्ण एकान्त में चले गये।

न केवलं दैहिकरक्षणाय,
समर्पि संकल्पकृतेऽपि मात्रा।
असह्य-संवेदनमन्वभावि,
बभार दैनन्दिनकार्यजातम्॥ १३९॥

अर्थ- भावमयी माताजी का समर्पण अडिग था। गुरुदेव के भौतिक जीवन के प्रति भी असीम अनुराग होते हुए भी वे उनके संकल्प के प्रति समर्पित थीं। अपने आराध्य की इच्छा ही उनकी इच्छा थी। अपनी असह्य आन्तरिक विकलता को किसी तरह दबाए हुए वे दैनिक काम-काज में संलग्न रहती थीं।

तयोदितं शान्तिनिकुञ्जगोष्ठ्यां,
स्वदेहत्यागाय विनिश्चितं वै।
सौभाग्यसिन्दूरमवर्जितुं वै,
पूर्वं यथा शारदरत्नरूपे॥ १४०॥

अर्थ- अप्रैल महीने के अन्तिम दिनों में उन्होंने शान्तिकुञ्ज की गोष्ठी में गुरुदेव द्वारा किये गये स्थूल देहत्याग के शिवसंकल्प को संकेतों में स्पष्ट रूप से समझाया, साथ ही उन्होंने गुरुदेव के इस निर्देश को भी स्पष्ट किया कि मेरे देह त्याग देने के बाद तुम सौभाग्य सिन्दूर का त्याग न करना। तुम ठीक उसी तरह अपने सौभाग्य सिन्दूर को धारण किये रहना, जैसा कि पिछली बार तुमने शारदामणि के रूप में किया था।

निर्दिष्टदिष्टे गुरुणात्मदेहं,
संत्यज्य चाहावि निजस्वरूपम्।
लीनं पराशक्तिचितिस्वरूपे,
तेजः स्वयं मातृतनुं कृशानोः॥ १४१॥

अर्थ- अपने द्वारा निश्चित की गई तिथि एवं निर्धारित समय के अनुसार गायत्री जयन्ती २ जून सन् १९९० को प्रातः आठ बजे के

लगभग गुरुदेव ने शरीर छोड़ दिया। उनकी अन्तश्चेतना महाशक्ति में लीन हो गई। देह के भस्म होने के साथ अग्नि का तेज और ताप, गुरुदेव के परम तेज के साथ वन्दनीया माताजी में समा गया।

वियोग महातपा माता

सेहे स्वदीर्घे जनने अकथ्यान्,
कष्टान् तथाप्येकपदे ततापः।
सहिष्णुताऽगाधपदा हि मातुः,
यतो गुरुः सर्वसहां चचक्षे॥ १४२॥

अर्थ- पिछले जीवन की लम्बी अवधि में उन्होंने कठोर तप-साधनाएँ की थीं। उनकी सहनशक्ति इतनी अगाध एवं असीम थी कि गुरुदेव उन्हें सर्वसहा कहा करते थे।

सोढुं गुरूणां नवविप्रयोगः,
अकल्पनीयत्वमधात् जनन्याः।
तथापि दैनन्दिन-दर्शनाय,
शिष्याननुग्राहयितुं न्यषीदत्॥ १४३॥

अर्थ- परम पूज्य गुरुदेव के भौतिक वियोग का यह महातप असह्य लग रहा था। भावमयी माताजी की विकलता की कल्पना पूरी तरह से अकल्पनीय थी। अपनी इस असीम वेदना को सहती हुई वे उन दिनों नियमित प्रणाम में बैठ रही थीं। अपने बच्चों के लिए उनका प्यार-दुलार व उन पर आशीषों की अजस्र वर्षा अब पहले से भी ज्यादा बढ़ गई थी।

यतो यतः कार्ययशो विवृद्धं,
भारं वहन्ती तप आचचार।
आश्वासयन्ती सकलानबोधान्,
अहर्निशं सन्तनुते स्म धैर्यम्॥ १४४॥

अर्थ- लगातार विस्तृत होते मिशन की अगणित जिम्मेदारियों को निभाते हुए विश्वजननी विश्वकल्याण के लिए अहर्निश तप कर रही थीं। बीच-बीच में अपने भावुक और नादान बच्चों को भी धीरज देती थीं।

पश्यन्तु वत्सा नु सहिष्णुता का ?
संजीवितुं यास्ति सदाह्यपूर्वाम्।
उच्चस्तरीयस्य च जीवनस्य,
कृते तपस्यैव हि धैर्यकाष्ठा॥ १४५॥

अर्थ- जब-तब अपना उदाहरण देते हुए यह समझाती थीं कि देखो-सहा कैसे जाता है ? सहिष्णुता क्या होती है ? और वह जीवन के लिए कितनी आवश्यक है; वे यह भी बतातीं कि उच्चस्तरीय जीवन के उद्देश्यों के लिए कष्ट सहने का दूसरा नाम ही तपश्चर्या है।

तपस्विनामस्ति च यः सहिष्णुः ,
सत्यस्तपस्वी सहजः सहिष्णुः।
यस्यास्ति सोढुं च कला स जीवी,
एतच्च सर्वं अनुभूतिरुक्ता॥ १४६॥

अर्थ- जो सहिष्णु है, वही तपस्वी हो सकता है। जो सच्चा तपस्वी है, सहिष्णुता अपने आप ही उसका स्वभाव बन जाएगी। जिसने सहन करने की कला जान ली, समझो उसने जीवन जीना सीख लिया। उनकी इन बातों में उनके निजी जीवन की अनुभूति घुली थी।

महाशक्तेर्महिम्नः प्रभावः

अनिद्र एको गुरु-विप्रयोगात्,
मासद्वयान्ते स्वपने ददर्श।
अङ्के स मातुः शयितस्तदा सा,
विनोदयामास शिरः स्पृशन्ती॥ १४७॥

अर्थ- एक कार्यकर्त्ता दो महीनों में ठीक से सो नहीं पाया था। गुरुदेव का अभाव उसके लिए असह्य था। विकल वेदना से भरे इन दिनों में उसने एक रात अर्द्धनिद्रा में स्वप्न में देखा कि वह लेटा हुआ है और वन्दनीया माताजी अपनी गोद में उसका सिर रखे हैं। वे अपने हाथों से बड़े प्रेमपूर्ण ढंग से उसके सिर को सहला रही हैं।

आहूय चैनं च जगाद माता,
स्वप्नं यथावत् पुनरादिशन्ती।
प्रेमा महान् उच्यत एकदृष्ट्या,
कर्त्तव्यमस्मादपि ज्याय एव॥ १४८॥

अर्थ- एक दिन दोपहर को वन्दनीया माता जी ने सचमुच उसे अपने पास बुला लिया। उन्होंने उसके स्वप्न की भाषा यथावत् कह सुनायी। फिर बोलीं-प्रेम बहुत बड़ी चीज है, लेकिन उससे भी बड़ी एक चीज है-कर्त्तव्य।

यं श्रद्दधामो ह्यनुतं व्रजामः,
आधाय तस्यैव महानिदेशम्।
वियोगपीडामपि धारयामः,
कर्त्तव्यनिष्ठः स महातपस्वी॥ १४९॥

अर्थ- जिसके प्रति हमारी गहरी श्रद्धा होती है, उसके आदेश को मानकर वियोग की पीड़ा सहते हुए यदि हम उसके द्वारा बताये गये कर्त्तव्य का सतत पालन करते हैं, तो यह महातप है।

लोकोत्तरं कार्य-विशेषहेतोः,
परं महावीर इवस्थितोऽसौ।
विनाशकारीण्यसुराणि हन्तुम्,
अस्माकमास्ते गुरुरद्वितीयः॥ १५०॥

अर्थ- आगे उन्होंने बताया गुरुदेव सामान्य व्यक्ति की तरह मरे नहीं हैं।

उन्हें अपने विशेष कर्त्तव्य के लिए शरीर छोड़कर जाना पड़ा है। वे अभी भी परमवीर महानायक की भाँति अपने मोरचे पर कुशलता से डटे हैं। विनाशकारी आसुरी तत्त्वों को वे कड़ी टक्कर दे रहे हैं। हमारे गुरुदेव की कहीं समता नहीं है।

आचारवान्यः पुरुषः समर्प्य,
सश्रद्धमाश्रुत्य गुरोर्निदेशम्।
करोति कार्यं सकलं तपस्तत्,
आकर्ण्य मातुर्वचनं स्मृतं तद्॥ १५१॥

अर्थ- जो पवित्र जीवन जीते हुए गुरुदेव के प्रति पूर्ण श्रद्धा व समर्पण रखते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, वही उसकी तपस्या है। माताजी के इन वचनों को सुनकर वह दृश्य याद आ गया।

माता यदा पार्थिवदेहकंठे,
गुरुं प्रणम्यात्मन इष्टकार्यम्।
संकल्पयामास हि अश्रुमग्ना,
सर्वेजनाः भावमया बभूवुः॥ १५२॥

अर्थ- जब वन्दनीया माताजी ने पूज्य गुरुदेव के पार्थिव शरीर को अन्तिम प्रणाम करते हुए अपने महातप का संकल्प लिया था। बड़े ही भावपूर्ण वे क्षण थे। माताजी के साथ सभी परिजन अश्रुमग्न व भावपूर्ण हो रहे थे।

क्षणाच्च पूर्वं विललाप माता,
परं क्षणात् सा कठिना बभूव।
उत्थाय मन्दं तिलकं चकार,
प्रणम्य सम्यक् गुरुपादपद्मे॥ १५३॥

अर्थ- एक पल पहले बिलख रही माताजी के मुखमंडल पर यकायक दृढ़ता की अनोखी दीप्ति छा गई। वे धीमे कदमों से उठीं। उन्होंने गुरुदेव के मस्तक पर तिलक लगाया और चरणों में प्रणाम किया।

प्रभो! त्वदीयां शिरसाऽनुधृत्य,
आज्ञां सदा कार्यमहं करिष्ये।
यावच्च प्राणानहमाधरिष्ये,
सर्वं सहिष्ये तव कार्यहेतोः॥ १५४॥

अर्थ- हे प्रभो! मैं अपनी अन्तिम साँस तक सभी कुछ सहकर आपके काम को करती रहूँगी। आपके आदेश को शिरोधार्य करके सतत कर्त्तव्य का पालन करती रहूँगी।

(तत्पश्चात् वहाँ उपस्थित परिजनों से दृढ़तापूर्वक वन्दनीया माताजी बोलीं-)

वत्साः! मयाऽकारि विधातुमिच्छा,
संकल्पसिद्ध्यर्थमहो विशेषम्।
श्रद्धांजलिः स्यादृभुदर्शनीया,
तथा भवेत् स्मारकमद्वितीयम्॥ १५५॥

अर्थ- बच्चो! हमने दो संकल्प ले लिए हैं। मैं समझती हूँ कि इन्हें पूरा कराने में वे ही मदद करेंगे। एक शानदार श्रद्धांजलि समारोह मनाएँगे। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का होगा। दूसरा संकल्प स्मारक बनाने का है, जो अविस्मरणीय होगा।

सा बोधयामास न भक्तिरेषा,
त्यक्त्वा विधेयं भवतादकर्मा।
क्षणे-क्षणे संक्षिणुवन् स्वशक्तिं,
गुरोः कृते स्वं जुहुयादशेषम्॥ १५६॥

अर्थ- माताजी सुनने वालों को समझा रही थीं, भक्ति कोरी भावुकता नहीं है। यह रोते-बिलखते रहकर अकर्मण्य बनकर पड़े रहने का नाम नहीं है। भक्ति अपने गुरुदेव के आदेश पर तिल-तिल गलते हुए, क्षण-

क्षण जलते हुए सब कुछ सहते हुए मर मिटने का नाम है। इस भक्ति से बड़ा और कोई तप नहीं है।

समर्थमीशं विवशं करोति,
सा ज्यायसी भक्तिरतस्तपस्तः।
तयाऽप्रमेया स्फुरतेऽत्र शक्तिः,
सर्वेश्वरीत्थं महिमानमाह॥ १५७॥

अर्थ- ऐसी भक्ति सर्वसमर्थ भगवान् को भी विवश और विकल बना देती है। इसलिए ऐसी भक्ति तप से बढ़कर श्रेष्ठ है। इसी से अपरिमित एवं अपार शक्ति स्फुरित होती है। सर्वेश्वरी का यह कथन उन्हीं के अनुरूप था। इससे महाशक्ति की महिमा प्रकट हो रही थी।

ये शान्तिकुंजे निवसन्ति लोकाः,
ये ब्रह्मणो वर्चसमामनन्ति।
कुर्वन्ति कार्यं च तपोभुविष्ठाः,
जानन्ति ते मातुरमोघशक्तिम्॥ १५८॥

अर्थ- जो परिजन शान्तिकुञ्ज में निवास करते हैं, जो ब्रह्मवर्चस संस्थान में कार्य करते हैं, जो तपोभूमि में निवास कर रहे हैं तथा गायत्री परिवार के परिजन हैं, वे तो पहले से ही अपनी माँ की महिमामयी अमोघ शक्ति से सुपरिचित हैं।

अष्टाधिके विंशतमे दिनांके,
अप्रैल मासे खनिधि ग्रहेन्दौ।
आचार्य वर्य्यः स्वयमादिदेश,
सम्पादयध्वं खलु ब्रह्मदीपान्॥ १५९॥

अर्थ- २८ अप्रैल सन् १९९० को परम पूज्य गुरुदेव ने स्वयं ही ब्रह्मदीप-यज्ञों का निश्चय किया था। अपने सभी परिजनों को ब्रह्मदीपयज्ञ सम्पन्न करने का निर्देश दिया था।

पवित्र गंगादशमीमुहूर्ते,
प्रज्ञावतारः स्वयमात्मलीनः।
आयोजका यज्ञ-विशेषलग्नाः,
श्रद्धांजलिं ते कथमर्पयन्तु॥ १६०॥

अर्थ- २ जून सन् १९९० को उनके महाप्रयाण के समाचार मिलने के बावजूद परिजन सौंपे गये कार्य को पूरा करने में जुटे रहे। ऐसी स्थिति में वे अपने प्रभु को श्रद्धांजलि कैसे अर्पित करते?

माता सुतानां प्रतिवेदभावान्,
जानाति सा हार्दिकवेदनाञ्च।
अतस्तया घोषितमाशुचेत्थं,
संकल्पश्रद्धांजलि-यज्ञकार्यम्॥ १६१॥

अर्थ- वन्दनीया माताजी अपने बच्चों के इन मनोभावों से परिचित थीं। वे अपने पुत्रों की हार्दिक वेदना को भली प्रकार से जानती थीं। इसलिए उन्होंने तुरन्त संकल्प श्रद्धांजलि-यज्ञ कार्यक्रम की घोषणा कर दी।

तस्मिन् समारोहमये नु कुम्भे,
समागताश्चाधिकपंचलक्षम्।
पीताम्बराभूत्सकला धरित्री,
सपीतवस्त्रैः पुरुषैर्नरीभिः॥ १६२॥

अर्थ- एक अक्टूबर से चार अक्टूबर सन् १९९० तक समारोह पूर्वक मनाये गये श्रद्धांजलि यज्ञकार्य में पाँच लाख से अधिक परिजनों ने भाग लिया था। पीले वस्त्रधारी नर-नारियों से सम्पूर्ण हरिद्वार के आस-पास की धरा पीतवर्ण वाली हो गई थी।

तद्राज्यपालादिमहामहिम्नां,
मुखारविन्दे मुखराऽभिव्यक्तिः।

सामान्यमेतद् न हि दिव्यदिव्यं,
चकासते मातुरनन्यशक्तिः॥ १६३॥

अर्थ- उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम सत्यनारायण रेड्डी भी इस कार्यक्रम में आये थे। उन्होंने सबकुछ देखकर मुखर अभिव्यक्ति दी कि यह सभी कुछ दैवी एवं दिव्य है। माताजी की अनन्त शक्ति प्रकाशित हो रही है।

यन्मंडलं दीप्तिकरं विशालं,
उदीर्य लक्षाधिकयज्ञदीपाः।
देदीप्यमाना युगपत् बभूवुः,
राकेशभा मन्दसती बभासे॥ १६४॥

अर्थ- 'यन्मंडलं दीप्तिकरं विशालं' की ध्वनि के बीच लाखों दीप प्रज्वलित हो उठे। शरत् पूर्णिमा की रात थी, परन्तु पूर्णिमा का चाँद भी छोटे-छोटे दीपों की समन्वित आभा ऊर्जा के सामने मन्दकांति लग रहा था।

वियोगवेलाऽपि समागता सा,
नेत्राणि भावाश्रुमयानि चासन्।
लक्षाधिकानां ह्यशनव्यवस्था,
विस्फूर्जितं मातुरनन्यशक्तेः॥ १६५॥

अर्थ- ४ अक्टूबर सन् १९९० को जब विदाई की वेला आई, तब सभी के हृदय भरे और भीगे थे। वन्दनीया माताजी की महाशक्ति के अनेकं चमत्कार इन दिनों देखने को मिले। उनमें से एक चमत्कार यह भी था कि लाखों लोगों के नित्य भोजन करने के बावजूद शान्तिकुञ्ज के अन्न-भण्डार पूरी तरह से भरे रहे।

राष्ट्रे संस्कृतिसम्वेदनाविस्तारः

समाप्य श्रद्धांजलि-कार्यजातं,
स्वचिन्तनं राष्ट्रहिताय दत्तम्।

सा चिन्तयामास पुनःपुनर्वै,
राष्ट्रस्य प्राणाः कथमुत्थिताः स्युः॥ १६६॥

अर्थ- श्रद्धाञ्जलि समारोह के बाद माताजी यह सोचने लगीं कि ऐसा कौन सा अनुष्ठान सम्पन्न किया जाए, जिससे राष्ट्र के प्राणों को नवस्फूर्ति प्राप्त हो। देश की संस्कृति-संवेदना अपना व्यापक विस्तार कर सके।

आश्वासयन्ती पुनरागमाय,
गंगावतारं प्रति-प्रस्थिता सा।
समेतशैला-प्रणवात्मजादिः,
सौभाग्यवन्तश्च परेऽपि केचित्॥ १६७॥

अर्थ- इसी समय माताजी ने हिमालय यात्रा की योजना बनाई। वे बोलीं- वहाँ जाने का कारण कुछ और है। ये बातें तुम सबको मेरे वहाँ से लौटने पर पता चलेंगी। इस प्रकार अपनी वापसी के बारे में सबको निश्चिन्त कर वे हिमालय में गंगोत्री के लिए चल पड़ीं। उनके साथ शैलदीदी, डॉ. प्रणव पण्ड्या, चिन्मय एवं कुछ अन्य पारिवारिक सदस्य भी थे। दो-चार सौभाग्यशाली जनों को भी उनके साथ इस यात्रा में जाने का सुयोग मिला।

संप्राप्य मध्ये हिमशेखराणां,
स्वां दर्शयन्ती पितृवेश्मनीव।
यामाह्वयामास पिता स्वयं वै,
ध्यानस्थितेवाभवदाशुमाता॥ १६८॥

अर्थ- हिमशिखरों के मध्य पहुँचकर माताजी ऐसा अनुभव करने लगीं, जैसे कोई कन्या अपने पीहर आई है। जैसे वह अपने आप नहीं, पिता हिमालय के बुलावे पर यहाँ आई हैं। वे तुरन्त ध्यानमग्न हो गईं।

भागीरथीमेत्य शिलां पुनः सा,
ध्याने निमग्ना बहुकालमासीत्।

उत्थानकाले ह्यथ सा बभूव,
प्रसन्नतादीप्तमुखारविन्दा॥ १६९॥

अर्थ- गंगोत्री के पास भागीरथ शिला पर तो वे काफी देर ध्यान मग्न बैठी रहीं। वहाँ पर जब वे ध्यान से उठीं, तो उनके चेहरे पर कुछ विशेष पाने की प्रसन्नता की प्रदीप्ति थी।

आगत्य भव्यं शपथाख्यसंघं,
संपादयामास समग्रराष्ट्रे।
उद्घोषयन्ती हयमेधयज्ञान्,
प्रकाशयामास महर्षिवाञ्छाम्॥ १७०॥

अर्थ- वापस शान्तिकुञ्ज आने पर उन्होंने एक भव्य शपथ-समारोह में राष्ट्रव्यापी अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की। यह घोषणा करते हुए उन्होंने बताया कि हिमालय में निवास करने वाली दिव्य शक्तियों का यही आग्रह है कि राष्ट्र को सशक्त एवं समर्थ बनाने वाले अश्वमेध-यज्ञों का महानुष्ठान किया जाए।

प्रायेण सर्वेह्यभिलाषवन्तः,
आयोजनायाति बभूवुरग्रे ।
माता स्वयं कर्मकरान्नियुज्य,
मुद्रापयामास विशेषमङ्कम्॥ १७१॥

अर्थ- यह जानकर कि इन महायज्ञों में माताजी स्वयं आएँगी, सभी अपने क्षेत्रों में इस महायज्ञ को करने के लिए उतावले थे। माताजी ने अपनी देखरेख में इस महायज्ञ का कर्मकाण्ड तैयार करवाया। परिजनों को इसकी जानकारी देने के लिए माताजी ने अखण्ड ज्योति का एक सम्पूर्ण विशेषांक (नवम्बर १९९२) तैयार करवाया।

यात्रां तु चक्रे प्रथमाश्वमेधे,
माता स्वयं वायुविमानद्वारा।

क्रमोऽयमग्रेपि चचाल मातुः,
यज्ञे समाप्ते ननु चित्रकूटे॥ १७२॥

अर्थ- इसी के साथ परम वन्दनीया माताजी ने जयपुर के प्रथम अश्वमेध के लिए वायुयान द्वारा यात्रा प्रारम्भ की। उनका यह क्रम भिलाई, गुना, भुवनेश्वर, लखनऊ, बड़ौदा, भोपाल, नागपुर, ब्रह्मपुर, कोरबा, पटना, कुरुक्षेत्र, चित्रकूट आदि स्थानों में होने वाले अश्वमेध महायज्ञों में जारी रहा।

देशस्य मुख्या अधिकारिणश्च,
ये राज्यपालादिमहानुभावाः।
यज्ञे स्थितास्ते ह्यनुभावमाहुः,
वात्सल्यपूर्णं ननु मातुरन्तः॥ १७३॥

अर्थ- देश के प्रमुख अधिकारियों, मुख्य मन्त्रियों, राज्यपालों एवं उस समय प्रतिपक्ष के नेता अटलबिहारी वाजपेयी आदि अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने इन अश्वमेध कार्यक्रमों में उपस्थित होकर अनुभव किया कि माताजी का हृदय समूचे राष्ट्र के प्रति वात्सल्य से भरा हुआ है।

रामश्च सीता सह लक्ष्मणेन,
सत्संगलाभाय गतौ मुनीन्ह।
सर्वत्र माता अगमद् ददर्श,
चेत्थं प्रभुं स्वं ननु मार्गयन्ती॥ १७४॥

अर्थ- चित्रकूट अश्वमेध के समय शारीरिक अक्षमता के बावजूद माताजी उन सभी स्थानों पर गईं, जहाँ प्रभु श्रीराम, माता सीता एवं भाई लक्ष्मण के साथ गये थे। जहाँ उन्होंने अनेक ऋषि-मुनियों का सत्संग लाभ लिया था। माताजी उन सभी स्थानों पर आग्रह पूर्वक गईं। उन स्थानों को उन्होंने इस तरह से देखा, जैसे वे यहीं-कहीं अपने प्रभु राम को खोज रही हों।

प्रवासि-परिजनेषु मातृवात्सल्यानुभूतिः

संचारयन्ती नवप्राणदीप्तिं,
राष्ट्रस्य प्राणेषु चकार यात्राम्।
वैदेशिको भक्तगणोऽपि चेत्थं
समुत्सुकोऽभूज्जननीं ग्रहीतुम्॥ १७५॥

अर्थ- राष्ट्र के प्राणों में नव-स्फूर्ति का संचार करते हुए उनकी यात्रा चल रही थी। उन्हें इस तरह यात्रा करते हुए देखकर विदेशों में बसे परिजनों के मन में यह लालसा सघन हो गई कि उनकी माँ उनके पास भी आ जाएँ।

विदेशयात्रां नहि कर्तुमीहे,
तथापि वत्सानवलोकयेयम्।
इत्थं विचार्यैव हि लोकमाता,
स्वीकारयामास विदेशयज्ञान्॥ १७६॥

अर्थ- उन्होंने कहा- मैं विदेश यात्रा नहीं करना चाहती, तथापि एक बार जाकर मैं अपने विदेशों में बसे सभी बच्चों को देख आऊँ, ऐसा विचार करके विश्वमाता ने विश्वयात्रा करने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

इंग्लैण्ड देशे प्रथमाश्वमेधः,
प्रारब्ध आसीत् पुरि लीस्टराख्ये।
लक्ष्मीमलः सिंघविरुच्चयुक्तः,
कार्यक्रमेऽस्मिन् मिलितः सभार्यः॥ १७७॥

अर्थ- इस कार्यक्रम में पहला अश्वमेध महायज्ञ इंग्लैण्ड के लीस्टर नामक शहर में ८ से ११ जुलाई सन् १९९३ में आयोजित किया गया। इंग्लैण्ड में भारत के तत्कालीन उच्चायुक्त श्री लक्ष्मीमल सिंघवी भी सपत्नीक इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए।

दिव्यानुभावान् विविधान्निशम्य,
कर्णाडदेशीय जनाः समुत्काः।
प्रधानमन्त्री ननु कैम्पबेला,
बभूव मुख्या सहयोगभागा॥ १७८॥

अर्थ- इंग्लैण्ड के महायज्ञ की अनोखी अनुभूतियों को सुनकर टोरन्टो (कनाडा) के परिजन भी उत्साहित हो गये। उन्होंने पहले से ही २३ से २५ जुलाई सन् १९९३ की तिथियाँ अपने यहाँ के लिए निश्चित कर रखी थीं। इस कार्यक्रम में कनाडा की तत्कालीन प्रधानमंत्री कैम्पबेल और उनके मंत्रिमंडलीय सहयोगियों ने भारी सहयोग दिया।

माता प्रयाता ह्यमरीकदेशे,
लासादि एंजिल्स पुरेऽश्वमेधे।
सहस्रकुण्डात्मकयज्ञमध्ये,
दिव्यातिदिव्यं सकलं बभूव॥ १७९॥

अर्थ- कनाडा से वापसी के बाद ममतामयी माताजी ने १९ से २२ अगस्त सन् १९९३ को अमेरिका के लॉस एंजेल्स शहर में होने वाले अश्वमेध महायज्ञ के लिए प्रस्थान किया। वहाँ १००८ कुण्डीय अश्वमेध महायज्ञ का आयोजन किया गया था। माताजी के पहुँचते ही वहाँ के सम्पूर्ण वातावरण में दिव्यता छा गई।

दीक्षार्थमासन् समुपस्थिता ये,
त्रिंशत्सहस्राण्यनुदानमापुः।
मुखारविन्दात् श्रुतमन्त्रमात्राः,
उद्बोधनं मातुरशेषमापुः॥ १८०॥

अर्थ- वहाँ दीक्षा के लिए प्रायः तीस हजार लोग उपस्थित हुए। अनेक लोगों ने माताजी के अनुदान-वरदान पाये। माताजी के मुख से उच्चारित गायत्री मंत्र ने सचमुच ही उनके प्राणों को त्राण देने का कार्य किया।

अमेरिका मूलनिवासिनश्च,
कार्यक्रमे तत्र गृहीतभागाः।
बोधन्ति नो भारतराष्ट्रभाषां,
तथाप्यगृह्णन् हृदि दिव्यभावम्॥ १८१॥

अर्थ- अमेरिका के अनेक मूल निवासी भी इस कार्यक्रम में भागीदार हुए। हिन्दी भाषा से अनजान होते हुए भी उन्होंने अपने हृदय में माताजी के भावभरे उद्बोधन को आत्मसात् किया।

योगमायाया उपसंहारारम्भः

माताऽभवद् व्याधि-विकृष्ट-देहा,
गन्तुं ह्यशक्ताऽपि च चित्रकूटे।
उवाच गन्तास्मि पुनर्व्रजेयम्,
नवेति कृत्वा निदिदेश यात्राम्॥ १८२॥

अर्थ- सन्तानों की पीड़ा के लगातार विषपान से माताजी का स्वास्थ्य जर्जर होता गया। यहाँ तक कि १६ से २० अप्रैल सन् १९९४ को चित्रकूट में होने वाले अश्वमेध आयोजन में वे जाने की स्थिति में नहीं थीं। फिर वे बोलीं- 'तबियत तो खैर जैसी है, वैसी है, पर इस बार मैं जाऊँगी। इसके बाद कौन जाने मेरा कहीं जाना हो या न हो।' यात्रा की स्वीकृति दे दी गई।

शैलात्मजा प्राणवचिन्मयांश्च,
दुर्गां तथा मानसमातृपुत्रीम्।
नीत्वा स्थितप्रज्ञदशां प्रधार्य,
सर्वाश्वमेधस्य विधिं व्यधात्सा॥ १८३॥

अर्थ- इस यात्रा में उनके साथ शैलदीदी, डॉ. प्रणव पण्ड्या, इनके सुपुत्र चिन्मय और माताजी की मानसपुत्री दुर्गा दीदी थीं। स्थितप्रज्ञ की दशा में

रहते हुए उन्होंने चित्रकूट अश्वमेध के सभी कार्यक्रम विधिवत् पूरे किये।

दिनद्वयात्प्रागहमालुलोके,
स्वप्नेऽत्र सीता पुनरागतास्ति।
उद्बुद्धमात्राहमचिन्तयंश्च,
ऐष्यत्यवश्यं ह्यथ गुप्तगोदाम्॥ १८४॥

अर्थ- चित्रकूट पहुँचकर माताजी जैसे ही कार से उतरीं। एक १०-१२ साल की लड़की कार के समाने आ खड़ी हुई और कहने लगी - 'मैंने दो दिन पहले स्वप्न में देखा था कि सीता माता यहाँ आ रही हैं। जगने पर मैंने सोचा कि यदि शान्तिकुञ्ज वाली माताजी हमारी सीता मैया हैं, तो वे जरूर यहाँ गुप्तगोदावरी आएँगी और देखो, आप आ गईं।'

जनन्यहं भिक्षणपात्र मध्ये,
फलानि वन्यान्युपनीय तुभ्यम्।
एता प्रदातुं मनसाऽग्रहीत्सा,
धृत्वा शिरस्यात्मकरं जहौ ताम्॥ १८५॥

अर्थ- वह छोटी सी बच्ची कहे जा रही थी- 'मैया, मैं भिखारिन-छोकरी हूँ। ये जंगली फल मैंने आपके लिए इकट्ठे किये थे। इन सबको मैं आपको देने आई हूँ।' उसकी यह भेंट उन्होंने बड़े ही भाव-भरे मन से स्वीकार की तथा उसके सिर पर हाथ फेरा और वह चली गई।

माता गता गह्वर-गुप्तगोदां,
समग्रसाहाय्यगणेन सार्द्धम्।
अनेन साकं भ्रमणं समाप्तं,
प्राप्ता पुनर्भारत-शान्तिकुञ्जम्॥ १८६॥

अर्थ- माताजी अपने परिकर के साथ गुप्त गोदावरी की गुफा में गईं। इसी के साथ उनका यह भ्रमण समाप्त हुआ। भव्य दीपयज्ञ के बाद आयोजन स्थल से विदा लेकर वे पुनः शान्तिकुञ्ज आ गईं।

महाप्रयाणवेला

रोगानशेषानपहन्ति नृणां,
सैवाथ सुप्ता ह्यधिरोगशय्याम्।
संप्रार्थयामासुरशेषभक्ताः,
आराध्य-सायुज्य-समुत्सुकाऽभूत्॥ १८७॥

अर्थ- वन्दनीया माता जी अपने परिजनों के दैहिक-दैविक-भौतिक त्रिविध प्रकार के रोगों का हरण करती रही हैं; परन्तु आज वे ही रोग-शय्या पर पड़ी हुई हैं। सभी भक्तजन कार्यकर्त्ता, बच्चे प्रभु से उनके स्वास्थ्य की रक्षा हेतु प्रार्थना कर रहे थे। इधर वन्दनीया माताजी के प्राण अपने आराध्य में मिलने के लिए महाप्रयाण की तैयारी में लगे थे।

आयाहि भद्रे त्यज स्थूलदेहं,
वत्साः समर्थाः स्वयमेव पत्तुम्।
सूक्ष्मे जगत्येत्य तपस्तप त्वम्,
विश्वस्य भूत्या इदमत्यपेक्ष्यम्॥ १८८॥

अर्थ- परम पूज्य गुरुदेव के संकेत उन्हें बार-बार मिल रहे थे। इन संकेतों में एक ही स्वर निहित था, सब लड़के अब परिपक्व हो गये हैं, उन्हें अब अपने पाँवों पर खड़े होने देना चाहिए। अब आपको स्थूल कलेवर छोड़कर यहाँ सूक्ष्म जगत् में आकर तप करना चाहिए। विश्वकल्याण के लिए यह अधिक आवश्यक है।

आराध्य देवस्य संकेतमेतत्,
मासैरनेकैरनुभूयमानम्।
वात्सल्यभावादभिभूतमासीत्,
दुर्धर्षतामेति हि मातृभावः॥ १८९॥

अर्थ- गुरुदेव के इन सांकेतिक स्वरों को माताजी कई महीनों से लगातार अनुभव कर रही थीं; परन्तु बच्चों के प्रति उनका वात्सल्य भाव उनकी

विकलता पर छा जाता था। सच है मातृत्व-भाव अन्य सभी भावों से बढ़कर होता है।

सा बोधयामास मया शरीरं,
मनुष्ययोनौ धृतमस्ति सत्यम्।
मा बुध्यतां केवलमस्मि नारी,
संकेतितं चात्मनिजस्वरूपम्॥ १९०॥

अर्थ- महाप्रयाण से कुछ दिन पहले वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं को बुलाकर उन्होंने समझाकर कहा था- मैंने मनुष्य देह जरूर धारण की है, पर तुम लोग मुझे केवल मनुष्य न समझना। इस प्रकार उन्होंने विशेष रूप से अपने निजस्वरूप का संकेत कर दिया था।

क्रीडन्ति गंगाजलमध्य-मीनाः,
चन्द्रस्य बिम्बं परिवीक्ष्य मुग्धाः।
जानन्ति ते तं सदृशं स्वजात्या,
अस्तं गते ते शिथिली भवन्ति॥ १९१॥

अर्थ- देखो, गंगाजी के पानी में चाँद की परछाई देखकर छोटी-छोटी मछलियाँ आनन्द से उसके इर्द-गिर्द खेलने लगती हैं, सोचती हैं, यह हमी में से एक है, पर सुबह चाँद अस्त हो जाता है, तो उनकी पहले जैसी दशा हो जाती है। उछल-कूद के बाद शिथिलता आ जाती है।

वाचं यमाऽभूत् प्रतिबोध्यसर्वान्,
क्रमात् स्वदेहादपहाय चित्तम्।
युक्ता बभूवात्मनि चात्मतुष्टा,
ध्यानस्थिता सा विरराज दीप्त्या॥ १९२॥

अर्थ- सभी को इस तरह समझा कर वे मौन हो गईं। साथ ही उन्होंने कतिपय विशिष्ट यौगिक क्रियाओं के द्वारा अपनी आत्मचेतना को देह से हटाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे वे ध्यानस्थ हो तेजोमयी लगने लगीं।

आनन्द-दीप्त्या सह शान्तिमय्या,
मुखारविन्दं प्रतिभासते स्म।
ध्याने महाकाल विभोर्निमग्ना,
ये साक्षिणस्तेऽप्यति भाग्यवन्तः॥ १९३॥

अर्थ- भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर सन् १९९४ को प्रातः सभी को उनके मुखमण्डल पर एक अनोखा प्रदीप्त भाव झलकता दीखने लगा। ध्यानस्थ माताजी मूर्तिमयी प्रशांति के रूप में विराज रही थीं। वे महाकाल के ध्यान में मग्न हो रही थीं। इन पलों में साक्षी हुए लोग अपूर्व सौभाग्यशाली थे।

ध्यानेन केचिद् ददृशुर्निदृश्यं,
सधर्मिणीं स्वां स्वयमेव नेतुम्।
समागतः पूज्यगुरुः स्वधाम्नि,
अनेकदेवर्षिगणैः सेमेतः॥ १९४॥

अर्थ- पूर्वाह्न ११-४० पर ध्यानस्थ जनों के ध्यान में एक दृश्य बड़ी ही स्पष्ट रीति से उभरा। उन्होंने अनुभव किया कि परम पूज्य गुरुदेव अपनी लीला संगिनी को अमर धाम में लेने के लिए आए हैं। अनेक देवशक्तियाँ, सूक्ष्म लोक के ऋषिगण उन्हें घेरे हुए हैं।

मातुस्तपःपूततनुं दिदृक्षु- ,
शिष्याश्च भक्ताश्च सनातनीयाः।
अहश्च रात्रिं च प्रबुद्धवर्गः,
प्रावर्तत ह्यन्तिमदर्शनाय॥ १९५॥

अर्थ- सभी की दृष्टि माताजी पर टिकी हुई थी। क्षण बीते। ११-५० पर माताजी की स्थूल देह हल्की सी कंपित हुई और माता आदिशक्ति अपने परम पुरुष पुरुषोत्तम के साथ विराजमान हो गईं। उनकी तपःपूत देह के अन्तिमदर्शन के लिए शिष्यों-भक्तों व सन्तानों की भीड़ लग गई।

लगभग २४ घंटे तक अन्तिम दर्शन का सिलसिला चलता रहा।

महाप्रयाणात्परमग्निमेऽह्नि,
विभावसौ स्थूलतनुर्विलीना।
नित्यं ददाति स्म सुदर्शनं या,
सा ध्यानगम्याऽभवदाश्वसन्तु॥ १९६॥

अर्थ- अगले दिन २० सितम्बर सन् १९९४ महाशक्ति की आवास बनी उनकी स्थूल देह चिता-अग्नि के तेज में विलीन हो गई। नित्यप्रति अपने बच्चों को दर्शन देने वाली माता अब ध्यानमग्न हो गईं। हाँ, बच्चों को दिये गये आश्वासनों के स्वरों में गूँज अभी भी थी।

तस्याः समर्था ननु शक्तिरस्ति,
अस्माभिरन्यैरपि विद्यमाना।
हृदन्तरंगात् यदि 'मां' स्मरामः,
चैतन्य जाग्रद् ध्यमेव मन्त्रः॥ १९७॥

अर्थ- उनका प्यार-दुलार और सबसे बढ़कर उनकी समर्थ शक्ति हम सब के साथ विद्यमान है। यहाँ तक कि वे स्वयं भी हमारे आस-पास ही हैं। इस सचाई को अनुभव करने के लिए बस अपने दिल की गहराइयों से 'माँ' कहकर पुकारना होगा। यह एक अक्षर सृष्टि बीज है, मन्त्रराज और महामन्त्र है। इसे उन्होंने हम सबके लिए स्वयं जाग्रत् और चैतन्य किया है।

आश्वासनं मानसपुत्रेभ्यः

अनेकशः सा स्वयमेव प्राह,
न जातु त्यक्ष्याम्यहमात्मपुत्रान्।
जन्मादिमृत्युश्च नु देहधर्मा,
वहं यथावत् सततं धरिष्ये॥ १९८॥

अर्थ- उन्होंने अनेक बार अपने श्रीमुख से कहा है- 'मैं अपने बेटे-

बेटियों को छोड़कर जाने वाली नहीं हूँ। जन्म लेना और नष्ट हो जाना यह तो देह का धर्म ही है। पर इससे क्या, मैं तो जैसी की तैसी बनी रहूँगी।'

युष्मासु यःकोऽपि समाह्वयेन्मां,
प्रधाव्य तत्कालमहं प्रतिष्ठे।
नित्या सदैवाहमनित्यदेहा,
अव्यक्तरूपाऽस्मि न देहबद्धा॥ १९९॥

अर्थ- 'तुममें से जब कभी कोई माँ! माँ! कह कर बुलाएगा, तो मैं दौड़ी-भागी चली आऊँगी। अरे देह तो अनित्य है, मैं तो सदा नित्य ही हूँ। मैं तो तब भी थी, जब यह देह नहीं थी और मैं तो तब भी रहूँगी, जब यह देह नहीं रहेगी।'

माता विजानाति गिराविहीनां,
मूकस्य पुत्रस्य च भावभाषाम्।
आवाहयेद् यो विकलोऽपि बालो,
वात्सल्यबन्धात् स्वयमैति माता॥ २००॥

अर्थ- एक भक्त ने उनसे पूछा- माताजी! यह बुलाना कैसे होता है? यह सुनकर वे हँसने लगीं और बोली-'अपनी माँ को बुलाने के लिए कोई विधि-विधान भी होता है क्या? अरे बेटा! माँ तो अपने उस बच्चे की भी सारी बातें समझ लेती है, जो अभी बोलना भी नहीं जानता। ओ बेटा! गूंगे बहरे-बच्चे भी जब विकल होकर माँ को पुकारते हैं, तो माँ सब कुछ काम छोड़कर दौड़ी चली आती है।'

मातृसत्तायाः सन्देशः

यदा मदीया न भविष्यतीयं,
तनूस्तदा ये प्रति-शान्तिकुंजम्।
ऐष्यन्ति मां चैव यदा स्मरेयू ,
रक्षामि तान् स्नेहवितान-गुप्तान्॥ २०१॥

अर्थ- वे कहने लगीं- 'मैं अपने उन बच्चों से भी परिचित हूँ, जो मेरी देह के न रहने पर यहाँ शान्तिकुञ्ज आयेंगे। उन्हें मैं अपनी स्नेहछाया से पूरी तरह सुरक्षित रखूँगी। जब वे मुझे याद करेंगे, तो मैं उन्हें उनका अभीष्ट प्रदान करूँगी।'

क्षमस्व मातः सकलापराधान्,
ते पूर्णकामास्तव देवि द्वारे।
समागता ये वयमप्युपेत्य,
याचामहे निर्भर भैक्ष्य-पात्रम्॥ २०२॥

अर्थ- हम सबकी प्रत्येक आशा का केन्द्रबिन्दु तो आप हैं। आज हम आपसे अपने किए हुए कृत्यों के लिए, अपने समस्त अपराधों के लिए क्षमा की याचना कर रहे हैं। अपने द्वार पर आये सभी याचकों की झोली भरने वाली माता, आज हम बच्चों की झोली अपनी क्षमा से भर दो।

यदा स्मरामो वयमार्तिकाले,
उपस्थिता तत्क्षणमैति माता।
क्रूरोऽपि कालः स्वयमप्यपैति,
अनेकशः सत्यमिदं सुदृष्टम्॥ २०३॥

अर्थ- संकट में, आपत्ति में जब कभी हम पुकारते हैं, सर्वशक्तिमयी माँ अपनी समस्त शक्तियों के साथ आकर तत्क्षण उपस्थित हो जाती हैं। माता के स्मरण मात्र से क्रूर काल के बढ़ते कदम भी वापस पीछे हटने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इस सत्य का अनुभव हम बच्चों ने अपने छोटे से जीवन में अनेक बार किया है।

विभीषणारण्यमिदं हि विश्वं,
दिङ्मूढ-विभ्रान्त इव भ्रमामः।
ऋते त्वदङ्कान्नहि नः शरण्यं,
गोपाय गोपाय सदाशरण्ये॥ २०४॥

अर्थ- संसार के भीषण अरण्य में भटकते हुए हम दिग्भ्रान्त होकर लक्ष्य विहीन हो रहे हैं। हे वात्सल्यमयी! ऐसे में आपकी गोद ही हमें शरण दे सकती है। हे भावमयी! हे भगवती! हे अशरणों को सदा शरण देने वाली! हमारे अतीत और आगत के समस्त अपराधों को क्षमा करते हुए हमारी रक्षा करो।

महासमाधौ गुरुणा प्रयाते,
संबोधयामास समग्र-शिष्यान्।
यथैकलव्यश्च बभूव शिष्यः,
तथाऽस्मदीयः प्रतिकार्यकर्त्ता॥ २०५॥

अर्थ- परम पूज्य गुरुदेव के महाप्रयाण के बाद सभी शिष्यों व कार्यकर्त्ताओं को संबोधित करते हुए वात्सल्यमयी माताजी कहने लगीं- हमारा हर कार्यकर्त्ता शक्तिशाली दिखाई पड़ना चाहिए, हनुमान जैसा, अर्जुन जैसा, एकलव्य जैसा, शिवाजी जैसा।

श्रेष्ठं भवेच्चिंतनमाचरित्रम्,
यच्चिंतने भासति तच्चरित्रे।
यथा चरित्रं च तथा विहारो,
वातावृतिश्च स्वयमेव तादृक्॥ २०६॥

अर्थ- उसके चिन्तन और चरित्र दोनों ही उच्चस्तरीय होने चाहिए। जो चिन्तन में होता है, वही चरित्र में भी होता है और जो चरित्र में होता है, वही व्यवहार में भी होता है। जैसा व्यवहार में होता है, उसी प्रकार का वातावरण स्वतः बन जाता है।

सदा स्वयं-सेवक-भाववृत्तिः,
आसीद् गुरूणां सहजा प्रवृत्तिः।
आजीवनं तादृशमेव कृत्यं,
कारुण्य-संवेदनभावपूर्णम्॥ २०७॥

अर्थ- बेटे! बाल्यकाल से ही गुरुजी ने अपने चिन्तन को इस तरीके से ढाला कि एक स्वयं सेवक की मनोवृत्ति उनके अन्दर हमेशा विद्यमान रही। उनमें जो स्वयंसेवी वृत्ति थी, वही वृत्ति पनपती हुई चली आई। उनके जीवन में आरम्भ से ही करुणा, त्याग और संवेदना विद्यमान रही।

यो विश्वकल्याणकृते प्रवृत्तः,
श्रद्धां सदा वै लभते मनुष्यः।
प्रधाव्य लोकाः सहयोगभाजो,
भवन्ति वत्साः भुवि नात्र चित्रम्॥ २०८॥

अर्थ- जो विश्वकल्याण के लिए तिलतिल करके अपने को समर्पित करता चला जाता है, श्रद्धा तो उसे मिलने ही वाली है। उसका सहयोग करने के लिए लोग दूर-दूर से दौड़कर आते हैं। बच्चो! इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

तथाविधा मे ह्यनुभूतिरस्ति,
न चैवमुक्तं गुरुणा कदाचित्।
संवेदनाया अधिगम्य शक्तिं,
सिद्ध्यन्ति संकल्पकृतानि सम्यक्॥ २०९॥

अर्थ- जब हमारे अन्दर यह भाव आ जाएगा कि देने वाला तो दूसरा है, करने वाले हम हैं, फिर कोई भी काम अधूरा नहीं रहेगा। मेरा तो यही अनुभव है। आपको मालूम होना चाहिए कि गुरुजी ने ये शब्द कभी नहीं कहे कि मैं करूँगा। यही कहा होगा कि बेटा, तुम्हारे लिए भगवान् से प्रार्थना करेंगे। उन्होंने यह जरूर कहा कि संवेदना के रूप में हमें एक ऐसा प्रकाश मिलता हुआ चला जाता है कि जो संकल्प हम करते हैं, वे पूरे होते चले जाते हैं।

अन्येद्युरासं गृह-स्नानकक्षे,
श्रुता मयाऽद्धा गुरुदेव-वाणी।
बुद्धं मया का ह्यभिधातुमिच्छा,
तिष्ठन्ति ते मां परितः सदैव॥ २१०॥

अर्थ- कल-परसों की बात है, मैं स्नान कर रही थी। स्नान करते समय मुझे जोर से ऐसी आवाज आई 'शैलो'! मैं समझ गई कि गुरुजी कुछ कह रहे हैं। मैं तिलमिला गई। जब मैं बाहर आई तो समझ गई कि वे क्या कहना चाहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे मेरे दाएँ-बाएँ विद्यमान हैं।

इच्छाम्यहं ब्राह्मणबीजमेव,
यस्मिन् भवेद् ब्राह्मणवृत्तिभूतिः।
जीवेत् सदा ब्राह्मणवत् परार्थं,
लक्ष्यं गुरूणामिदमेव चासीत्॥ २११॥

अर्थ- गुरुजी का तो यही उद्देश्य था कि मुझे तो वह बीज चाहिए जो कि ब्राह्मण हो, अर्थात् ब्राह्मण-वृत्ति उसके अन्दर पनपे और ब्राह्मण जैसा जीवन जिए। परमार्थ के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दे।

अत्र स्थिता यूयमभूत विप्राः,
विकारमायाति यच्चिंतनं वः।
कुर्यात यूयं सकलं विशुद्धं,
अदर्शि वः साहसमद्वितीयम्॥ २१२॥

अर्थ- यहाँ बैठे हुए तो तुम सब ब्राह्मण ही हो, पर कहीं भी तुम्हारा चिन्तन गड़बड़ाता हो, तो तुम उस चिन्तन को साफ करना। आगे आने वाले समय में कितना काम करना है। मैं तुम्हारे अद्वितीय साहस को देख चुकी हूँ।

बहिर्गता ये कतिचिद् बभूवु-
र्ममोरसि प्राकृत-वेदनासीत्।

नाशक्नुवंश्चान्तिमदर्शनाय,
ते श्लाघनीया मदनुग्रहेण॥ २१३॥

अर्थ- उस समय हमारे कुछ बच्चे बाहर गये हुए थे। मुझे भीतर से वेदना हुई कि इन बच्चों को ऐसा लगा होगा कि हमने गुरुजी के अन्तिम दर्शन भी नहीं किये। बेटे, जो बच्चे यहाँ नहीं थे, मैं उनकी वेदना से वाकिफ हूँ। मैं उनकी प्रशंसा करती हूँ। उन्होंने जो कार्य किया, उस कार्य में ही गुरुजी को देखा।

मनोबलं संतत-वर्धनीयं,
उत्थापयेदन्यजनान् स्व ऊर्ध्वम्।
गन्तव्यमन्योऽन्यसमाश्रयेण,
सुखे च दुःखे सहभागिनः स्युः॥ २१४॥

अर्थ- बेटे! हमें मनोबल बढ़ाना है, अपना और दूसरों का। स्वयं उठना है और दूसरों को उठाना है। एक दूसरे के दु:ख-दर्द में काम न आएँगे, तो और कौन आएगा। सबसे मिलना-जुलना और सबके दु:ख-कष्ट में शामिल होना।

कार्यस्य दृष्ट्या पुरुषार्थ-दृष्ट्या,
स्वकीयदोषान् अपहन्तुमिच्छेत्।
अनारतं कार्यकरा भवन्तु,
यथा गुरुर्वः समनुग्रहीता॥ २१५॥

अर्थ- बेटे! अब तक मानलो तुममें कुछ कमियाँ थीं, लेकिन अब आगे आने वाले समय में नहीं होनी चाहिए। गुरुजी की तरह तुम्हें निरन्तर पुरुषार्थ करना पड़ेगा। गुरुजी का अनवरत आशीर्वाद तुम्हें मिलता रहेगा।

जिह्वा त्वदीया मधुमत्तमा स्यात्,
जानन्ति पूर्वे गुरुदेवशिष्याः।

कथं नु सेवामह आत्मवत्सान्,
आत्मीयतां पुष्यति नम्रता नः॥ २१६॥

अर्थ- बेटे! तुम्हारी वाणी में मिठास होनी चाहिए। गुरुदेव के पुराने शिष्य यह अच्छी तरह जानते हैं। गुरुजी के अन्दर कितनी नम्रता थी? किस तरह हम दोनों बच्चों की सेवा करते थे? हमारी नम्रता ही आत्मीयता के भावों को बढ़ाती चली गई।

जानन्तु सर्वानपि चात्मबन्धून्,
स्निह्यन्तु न्यूनान् स्वत आदरन्तु।
श्रेष्ठान् गुरोः स्नेहसमं दिशन्तु,
प्रत्येकमस्तु प्रतिमा गुरूणाम्॥ २१७॥

अर्थ- बेटे! सबको अपने समान समझो। अपने जो छोटे भाई हैं, उनको प्यार दो। अपने से जो बड़े हैं, उनका सम्मान करो। सबको गुरुजी जैसा प्यार दो-आत्मीयता दो। मिशन तुम्हारे द्वारा चलना है, तुम्हारे कन्धों पर चलना है, इसलिए हमारा प्रत्येक कार्यकर्त्ता गुरुजी की दूसरी कापी होना चाहिए।

विनम्रता स्यान्नु नम्रता स्यात्,
बलं भवेत्साहसमप्यरिक्तम्।
दुर्धर्ष पौरुष्यमपेक्ष्यते स्वम्,
आशास्महे केवलमात्मवद्भिः॥ २१८॥

अर्थ- हमें मिशन चलाना है, तो हममें प्रखरता होनी चाहिए। साथ ही अपने अन्दर साहस और बल भी होना चाहिए। हममें इतना पौरुष होना चाहिए कि कोई हमें दबा नहीं सके। हमारे यहाँ सभी जिन्दादिल लोग ही रहने चाहिए।

नो भावनाशून्यमभीष्ट-सिद्धिः,
विनाऽनया किं परमात्म-पूजा।

शक्या ? ह्युदात्ताशयभक्तिभावान्,
विहाय गन्तुं प्रभवेन्न कोऽपि॥ २१९॥

अर्थ- भावनाओं के बगैर भी कोई कार्य पूरा नहीं हो पाता। इसके बिना हम भगवान् की पूजा भी नहीं कर पाते हैं। जब तक भगवान् के प्रति उदात्त-भाव, समर्पण और करुणा पैदा नहीं होगी, तब तक क्या हम भगवान् के बताए रास्ते पर चल सकेंगे ?

उपासनाऽऽराध्य मुखोपविष्टिः,
यस्याः प्रभावात् करुणा ह्युदेति।
संवेदना भक्तिमयी जनानां,
सेवार्थमात्मानमभिव्यनक्ति॥ २२०॥

अर्थ- भगवान् के सम्मुख बैठना ही उपासना है अर्थात् उसमें मिल जाना। अनुभूति पैदा होना, करुणा पैदा होना। साधना माने अपने जीवन को ऊँचा उठाना। हमारा मुख्य ध्येय जनसेवा है। जिसका मन शुद्ध है, जिसमें दया, करुणा और संवेदना होती है, वही जनसेवा के लिए तत्पर होता है।

सेवा जनानां यदि वीप्सिता चेत्,
भव्यं तदा कर्मठसाधकेन।
श्रद्धागुरूणामभवत् प्रतम्,
समाज-सेवां प्रति नैष्ठिकी च॥ २२१॥

अर्थ- यदि जनसेवा करने की अभीप्सा हो, तो तुम्हें कर्मठ साधक बनना पड़ेगा। समाज सेवा करने के लिए ही गुरुजी को इतना तप करना पड़ा था। जितनी गायत्री माता के प्रति उनकी श्रद्धा थी, उससे भी ज्यादा सेवा के प्रति थी।

उद्देश्यमासीत् प्रखरं गुरूणां,
राष्ट्राय दास्यामि उदीयमानान्।

पौराननेकान् इति वै विचार्य,
इयेष राष्ट्रं चलितुं दिगूर्ध्वम्॥ २२२॥

अर्थ- गुरुजी समाज को ऊँचा उठाना चाहते थे। वे समाज को राष्ट्र को बहुत होनहार नागरिक देना चाहते थे। यही उनका उद्देश्य था। उनकी सारी जिन्दगी इसी में लग गई। वे राष्ट्र को ऊँचा उठाना चाहते थे।

आराधनाऽनारतलोक-सेवा,
उपासनाऽऽवश्यक-नित्य-कार्या।
नित्यं निरीक्षेत स्वकीय-दोषान्,
ततो विधेयः परिहार-यत्नः॥ २२३॥

अर्थ- निरन्तर समाज सेवा में लगे रहना ही आराधना है। नित्य-नियमित रूप से निष्ठापूर्वक उपासना करना आवश्यक है। बेटे! प्रतिदिन अपने दोषों पर ध्यान देना चाहिए तथा उनको त्यागने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

जीवेम सिद्धान्तपरम्पराभिः,
अभूतपूर्वो भविता प्रभावः।
सौभाग्यमस्माकमवर्णनीयं,
परः सहस्राणि च कार्यशीलाः॥ २२४॥

अर्थ- बेटे! अगर सिद्धान्तों को हमने अपने जीवन में उतार लिया है, तो फिर चाहे तुम सब छोटे से छोटे क्यों नहीं हो, तुम्हारा प्रभाव पड़ेगा। बेटे! हम बड़े ही सौभाग्यशाली हैं, जो हमारे पास इतने अधिक कार्यकर्त्ता हैं।

गुरोः परं किं भविता कथञ्च,
इत्थं न चिन्त्यं गुरुरात्मनाऽत्र।
आस्ते मया शान्तिनिकुंजमध्ये,
योगं च क्षेमं च स एव वोढा॥ २२५॥

अर्थ- अगर आप यह कहें कि गुरुजी के बाद क्या होगा? बेटे! गुरुजी का शरीर ही तो चला गया, लेकिन आत्मा तो उनकी यहीं विद्यमान है।

वे मेरे पास भी हैं और सारे शान्तिकुञ्ज में भी विद्यमान हैं। चाहे मैं भी न रहूँ, तो भी आपसे हमारा वायदा है कि आपके लिए कोई घाटा नहीं रहेगा। हम सभी का योगक्षेम वे ही वहन करते रहेंगे।

मा भिक्षुकः स्यान्मम कार्यकर्त्ता,
त्यागी तपस्वी च भवेत् सदैव।
निवेदयाम्यात्मसुतान् पुनश्च,
वः स्वार्थलाभौ न विचालयेताम्॥ २२६॥

अर्थ- बेटे! हमारा एक भी कार्यकर्त्ता भिखारी नहीं है, फिर से सुन लो। हमारा प्रत्येक कार्यकर्त्ता त्यागी-तपस्वी होना चाहिए। मैं आपसे भी निवेदन करती हूँ कि आप कभी स्वार्थपरता में, कभी लालच में मत फँसना। कई बार हमारी मनोभूमि विचलित हो जाती है, पर सँभलो, विचलित मत होने दो।

यथा प्रतिज्ञातमभूद् भवद्भिः,
तथाभवद्भिः प्रतिपालनीयम्।
संकल्पदार्ढ्यं प्रतिरक्षणीयं,
चारित्र्यसच्चिन्तनमर्हणीयम्॥ २२७॥

अर्थ- बेटे! आप लोगों ने भी जो वायदा किया था गुरुजी से, उसे आप भी निभाइये। आप भी अपने संकल्प-बल को ठीक कीजिए और अपने चिन्तन को, चरित्र को ठीक कीजिए। जो भी कुचिन्तन आ रहा हो, उसको भी साफ कीजिए।

वत्साः प्रिया यूयमतीव मह्यं,
नापाकरिष्ये न विहातुमीहे।
येनानुपाल्येत न चात्म-शिक्षा,
त्याज्यः स चास्माभिरतिप्रियोऽपि॥ २२८॥

अर्थ- बेटे! हमारे सब बच्चे हमको बहुत प्रिय हैं। हम किसी को हटाना नहीं चाहते, किसी को भगाना नहीं चाहते, लेकिन गड़बड़ी होगी तो बेटे, उसे सड़े टमाटर की तरह हम फेंक भी देंगे, इसमें दो राय नहीं है, चाहे वह हमारा कितना ही प्रिय क्यों न हो।

शिष्याणां संकल्पः

जगन्मातस्त्वद्धा सकलमनसा स्मस्तव सुताः,
इयं सर्वा क्रान्तिर्ह्यविकलतनूस्ते भगवति।
सदा श्रद्धां धृत्वा श्रमधनसमुत्साहबलिभिः,
करिष्यामो ह्यर्चां सकलगुणवत्तामुपगताः॥२२९॥

अर्थ- हे जगन्माता! हम सब सदा से आपके हैं और मन-वाणी-कर्म तथा सम्पूर्ण अन्तःकरण से सदा ही आपके बने रहेंगे। इस सम्पूर्ण मिशन को आपके दिव्य शरीर के रूप में अनुभव करेंगे। इसके प्रति सदा ही श्रद्धा-भाव रखते हुए अपने धन, श्रम एवं प्रतिभा को यशाशक्ति अर्पित करते रहेंगे।

मातुश्चरित्रमतिवेलरहस्यपूर्णं,
विज्ञैर्यथा विरचितं ह्यधिलोकयात्रम्।
संक्षेपमात्रमधिगन्तुमभीप्सुकानां,
तोषाय सुष्ठु भवतात् सुरभारतीयम्॥ २३०॥

अर्थ- 'महाशक्ति की लोकयात्रा' में महिमामयी माताजी का रहस्यपूर्ण चरित्र जो ब्रह्मवर्चस के द्वारा प्रकाशित किया गया है, उसे संक्षेप से जानने के लिए उत्सुक परिजनों के सन्तोष हेतु देववाणी का संबल लेकर लघु प्रयास किया गया है। माँ का पावन स्मरण सभी पाठक-परिजनों के मन-वाणी एवं अन्तःकरण को पवित्र करे।

❀ ❀ ❀

॥ ॐ श्री भगवती-देव्यर्पणमस्तु॥

मूलकः युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा